क्षितिज

क्षितिज

डॉ. शिव कुमार प्रसाद

पल्लवी प्रकाशन
बेरमा/निर्मली

KSHITIJ (क्षितिज)
Collection of Hindi Research Papers Criticism by
Dr. Sheo Kumar Prasad

Published by : Pallavi Parkashan
Tulsi Bhawan, J.L.Nehru Marg, Ward No. 06, Nirmali, District- Supaul, Bihar : 847452

website : http://pallavipublication.blogspot.com
e-mail : pallavi.publication.nirmali@gmail.com
Mobile : 6200635563, 9931654742

Typeset and Printed By : Manav Arts, Nirmali (Supaul), Pin : 847452
Cover Design : Smt. Punam Mandal, Nirmali (Supaul) Bihar : 847452

Price 200/-
Copyright © Author
2nd Edition : 2021 (First Edition : 2013, Reprint : 2014)

ISBN : 978-81-951070-0-1

All rights reserved. No Part of this publication may be reproductd or transmitted, in any form or by any means, without prior permission of the author.

अनुक्रम-

नागार्जुन का काव्य संसार/07

नागार्जुन का हिन्दी और मैथिली उपन्यास साहित्य में योगदान/20

हिन्दी भाषा की उपलब्धियाँ, चुनौतियाँ और समस्याएँ /36

कबीर का जीवन दर्शन/43

हिन्दी साहित्येतिहास में उर्दू साहित्य/51

व्यष्टि से समष्टि के रचनाकार अनूप लाल मण्डल/66

समकालीन हिन्दी कथा साहित्य और महिला लेखन 2000 के बाद की कहानियों में स्त्री विमर्श/73

प्रेमचन्द के उपन्यासों में कृषक जीवन का यथार्थ/86

नागार्जुन का काव्य संसार

नागार्जुन का "काव्य संसार" के अन्तर्गत मैंने सिर्फ मोटे-तौर पर उनकी रचना 'प्रतिबद्ध हूँ' के आधार पर उनकी प्रतिबद्धता, सम्बद्धता और आबद्धता के माध्यम से उनकी रचनात्मक धरातल को छूने का प्रयत्न किया है। 'प्रतिबद्ध हूँ' में उद्घोषित एक-एक शब्द उनके रचना वैविध्य के निर्देश हैं।

"इस वक्त जबकि कविता माँगती है
समूचा आदमी अपनी खुराक के लिए
उसके मुँह से खून की बू
आ रही है।"[1]

"बोल के: लब आजाद हैं तेरे
बोल जबाँ अब तक तेरी है
तेरा सुतवाँ जिस्म है तेरा
बोल के: जाँ अबतक तेरी है।"[2]

आजाद जिस्म और आजाद जुबाँ से जन-जन की वाणी बनकर जीने वाले जनकवि "नागार्जुन" आजीवन अपने दीन-(जनता) और

---

[1] **संसद से सड़क तक- धूमिल- (कवि- 1970) पृष्ठ- 61**

[2] **सारे सुखन हमारे- फेंज अहमद 'फैज' सं. अब्दुल बिस्मिल्लाह- बोल- पृष्ठ-** 155

मजहब (रचना) से जुड़े रहे। यही जुड़ाव उन्हें काव्य जगत से प्रतिबद्ध करता है। वे इससे ही सम्बद्ध और प्रतिबद्ध हैं। वहुजन हिताय- वहुजन सुखाय हेतु उन्होंने कभी "स्व" की परवाह नहीं की। नागार्जुन के काव्य संसार में भाषा, भाव, बोधगम्यता, सरलता, सहजता के साथ-साथ व्यंग्य का पैनापन अनुपम है। कविता में रुपों का जैसा वैविध्य नागार्जुन के काव्य में विद्यमान है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। भाषा में जहाँ ठेठ गँवई बोली है तो वहीं संस्कृत के संस्कारयुक्त पदावली भी। कहीं छंदमुक्त तो कहीं छंदबद्ध रचनाओं की छटा देखते हीं बनती है। काव्य में वर्णित विषय-वस्तु, नाना-रूपों में इस प्रकार प्रकट हुए हैं मानो जीवन और जगत के अंग-प्रत्यंग उनकी रचनाओं में समाहित होने हेतु होड़ ले रहे हों।

विपुल काव्य भूमि के विषम चितेरा नागार्जुन को समझना सहज नहीं है। ऊपर-ऊपर से समतल या सपाट दीखने वाली कविताओं की भाव-भूमि अपनी सम्पूर्णता में अद्भुत कवित्व मयी होती है। नागार्जुन के काव्य संसार को विविध भागों में बाँटा जा सकता है। एक ओर जहाँ जन चेतना से सरोकार की रचना है तो दूसरी ओर वैयक्तिक सरोकार की। एक ओर प्रकृति चित्रण है तो दूसरी ओर व्यंग्य विद्ग्धता। साधारण से असाधारण पुन: असाधारण से साधारण की ओर प्रयाण उनके काव्यधारा की पहचान है। मैथिली, हिन्दी, संस्कृत, बंगला इत्यादि भाषाओं में लिखित उनका रचना संसार रूप, रंग, भाव-भंगिमा में अन्यतम है।

कविवर नागार्जुन की कविताओं की विशेषताओं को प्रगतिवादी समालोचक डॉ. राम विलास शर्मा ने निम्न रूप में व्यक्त किया है- "नागार्जुन ने लोकप्रियता और कलात्मक सौन्दर्य के सन्तुलन और सामंजस्य की समस्या को जितनी सफलता से हल किया है, उतनी सफलता से बहुत कम कवि-हिन्दी से भिन्न भाषाओं में भी- हल कर पाये

हैं।"[3]

कविवर नागार्जुन विरचित कुछ कविता संग्रह निम्नवत् हैं- "युगधारा, सतरंगे पंखों वाली, प्यासी पथरायी ऑखें, तालाब की मछलियाँ, तुमने कहा था, खिचड़ी विप्लव देखा हमने, हजार-हजार बाहोंवाली, पुरानी जूतियों का कोरस, रत्नगर्भ, ऐसे भी हम क्या– ऐसे भी तुम क्या, ऐसा क्या कह दिया मैंने, इस गुब्बारे की छाया में, भूमिजा, भूल जाओ पुराने सपने, अपने खेत में इत्यादि।"

मैथिली में प्रकाशित "चित्रा", "पका है कटहल" तथा "पत्रहीन नग्न गाछ" है। 'पत्रहीन नग्न गाछ' के लिए उन्हें मैथिली सा.अकादेमी सम्मान से सम्मानित किया गया।

कविवर नागार्जुन के जीवन और कविता पर अगर हम ध्यान दें तो यह स्पष्ट हो जाता है कि उनका जीवन और काव्य दोनो में यायावरी है। घर, परिवार, समाज, धर्म, देश आदि को लाँघते हुए वे आजीवन यात्रा करते रहे। काव्य रचना के क्षेत्र में भी यह यात्रा जारी रही। जन के प्रति प्रतिबद्ध, "स्वजन, परिजन के प्यार की डोर में आबद्ध" संघर्ष से संबद्ध प्राकृतिक सौन्दर्य से अभीभूत, पैने दाँतों वाली मादासुअर के वात्सल्य से आगे बढ़ते हुए "वारुदी छर्रे की खुशबू" में डूबते-उतराते नागार्जुन की काव्य यात्रा को हम सहज ही देख सकते हैं-

"प्रतिबद्ध हूँ
सम्बद्ध हूँ
आबद्ध हूँ
प्रतिबद्ध हूँ, जी हाँ, प्रतिबद्ध हूँ-

---

[3] **नयी कविता और अस्तित्ववाद- डॉ. राम विलास शर्मा (नागार्जुन की काव्य कला) पृष्ठ-** 141

बहुजन समाज की अनुपल प्रगति के निमित-

संकुचित स्व. की आपाधापी के निषेधार्थ

सम्बद्ध हूँ, जी हाँ, सम्बद्ध हूँ...

राग से, द्वेष से, क्रोध से, घृणा से, हर्ष से, शोक से, उमंग से, आक्रोश से...

आबद्ध हूँ, जी हाँ, आबद्ध हूँ-

स्वजन परिजन के प्यार की डोर में

प्रियजन के पलकों की कोर में..."[4]

नागार्जुन की प्रतिबद्धता उन्हें जन साधारण के दुख दर्द को रेखांकित करने के लिए बाध्य करता है। वे अपनी अनेक रचनाओं में इस प्रतिबद्धता को दिखलाते हुए कहते हैं-

"इतर साधारण जनों से अलहदा होकर रहो मत

कलाधर या रचयिता होना नहीं प्रयाप्त है

पक्षधर की भूमिका धारण करो...

विजियिनी जनवाहिनी का पक्षधर होना पड़ेगा...

अगर तुम निर्माण करना चाहते हो

शीर्ण संस्कृति को अगर सप्राण करना चाहते हो।"[5]

प्रेत का ब्यान, मास्टर, धिन तो नहीं आती है, खुरदरे पैर, पसीने का गुणधर्म आदि रचनाएँ नागार्जुन की प्रतिबद्धता की रचनाएँ है।

'मैं मिलिट्री का बूढ़ा घोड़ा' बंगला में रचित काव्य संग्रह हैं, वहीं

---

[4] **नागार्जुन- प्रतिनिधि कविताएँ- सम्पादक- नामवर सिंह- प्रतिबद्ध हूँ- पृष्ठ-** 95

[5] **नागार्जुन- रचनावली- सं.- शोभाकान्त- खण्ड-** 1, **पृष्ठ-** 167

'देश दशकम', 'कृषक दशकम', 'श्रमिक दशकम' संस्कृत कविता तो 'धर्मालोक शतकम्' सिंहली लिपि में लिखित कविता है।

कविवर नागार्जुन के काव्य जगत के वैविध्यपूर्ण स्वरूप को हम बारी-बारी से देखने की कोशिश करेंगे-

(1) कविवर नागार्जुन का कविकर्म, कवि और काव्य विधा के तय मानको से अलग हैं। कविकर्म और काव्य की परिभाषा की परिपाटी को उन्होने ध्वस्त कर औधर की परंपरा को विकसित किया है। आधुनिक समीक्षक विनोद शाही बतलाते हैं- "परिभाषा और परिपाटी की सरहदे लाँघने या तोड़ने वाले नागार्जुन अकेले रचनाकार नहीं हैं वे हिन्दी के शुरुआती दौर से लेकर अब तक चली आने वाली एक लम्बी परम्परा के इतिहास-पुत्र या वारिस ही हैं... ।"[6]

पुन: विनोद शाही हिन्दी साहित्य की उस कड़ी को दिखलाते हुए बतलाते हैं- "भारतीय काव्यशास्त्र की 'बंद होती जाती गली' के पहले 'घर' में अगर सरहपा है, दूसरे में गोरख, तीसरे में कबीर और चौथे में निराला तो इस बंद गली के आखिरी मकान में किरायेदार की हैसियत से रहने वाले आदमी हैं- नागार्जुन। वे यहाँ एक प्रवासी की हैसियत से रहते हैं। दरअसल उनका अपना घर और है- किसी जनपद की ऊबड़ गद्यशास्त्रीय जमीन पर वे उसे अधबना सा छोड़कर इधर-उधर भटकने के लिए विवश नजर आते हैं।"[7]

कविवर नागार्जुन की संबद्धता उनके काव्य यात्रा का सबसे प्रमुख कारण है। एक जन साधारण की भावना से ओत-प्रोत नागार्जुन कबीर की तरह जहाँ भी जनता के विरूद्ध सड्यंत्र देखते हैं, साफ-साफ

---

[6] **वागर्थ- सं.- एकान्त श्री वास्तव एवं कुसुम खेमानी- आती है काव्य भाषा, गद्य के जनपद में- विनोद शाही पहली दफा नागार्जुन के साथ, पृष्ठ** 69

[7] **वही पृष्ठ-** 71

शब्दों में वहाँ आक्रमण करते दिखाई देते हैं। नेहरू, बाल ठाकरे, इन्दु (इन्दिरा गाँधी) विनोवा भावे, महात्मा गाँधी सरीखें राज नेताओं को भी नाम लेकर प्रश्न पूछने वाले जनकवि नागार्जुन जैसे कवि का मिलना दुर्लभ है। नागार्जुन का कवि हृदय कभी डरा नहीं। "आओ रानी, हम ढोयेंगे पालकी" 'बर्बरता की ढाल ठाकरे', 'इन्दु जी इन्दु जी क्या हुआ आपको', 'शासन की बंदूक' आये दिन बहार के, तीनो बंदर बापू के आदि ऐसी काव्य रचनाएँ हैं जिसमे क्रोध, घृणा आक्रोश के स्वर व्यंग्य रूप में स्पष्ट दृष्टिगत होता है-

"आओ रानी हम ढायेंगे पालकी,
यही हुई है राय जवाहर लाल की
---- -- -- --
भूखी भारत माता के सूखे हाथो को चूम लो
प्रोसिडेण्ट की लंच डिनर में स्वाद बदल लो, झूम लो
-- -- -- -- --
बापू को मत छेड़ो अपने पुरखों से अपने उपहार लो
जय ब्रिटेन की जय हो इस कलिकाल की!
आओ रानी हम ढोयेंगे पालकी,
यही हुई है राय जवाहर लाल की।"[8]

पुन: बाल ठाकरे के विषय में बतलाते हैं-
"बाल ठाकरे! बाल ठाकरे!!
कैसे फसिस्टी प्रभुओं की- गला रहा है दाल ठाकरे।

---

[8] **नागार्जुन- प्रतिनिधि कविताएँ- सं. नामवर सिंह- पृष्ठ-** 97-99

-- -- -- -- --

चुप है कवि डरता है शायद, खींच नहीं ले खाल ठाकरे!

बाल ठाकरे! बाल ठाकरे! बाल ठाकरे!, बाल ठाकरे!"

बर्बरता की ढाल ठाकरे!

प्रजातंत्र का काल ठाकरे![9]

'शासन की बन्दूक' के सामने खड़े नागार्जुन सत्तासीन प्रभुओं को चुनौती देते हैं-

"सत्य स्वयं घायल हुआ, गयी अहिंसा चूक

जहाँ-तहाँ दगने लगी शासन की बन्दूक

जली ठूँठ पर बैठकर गयी कोकिला कूक

बाल न बांका कर सकी शासन की बन्दूक... ।"[10]

कविवर नागार्जुन की आबद्धता में यायावर जिंदगी के बाद परिजन-पुरजन, मिट्टी की सोंधी गंध, पुजारिन भाभी की छेड़-छाड़, के प्रति जो आकर्षण (हुड़क) है वह अनुपम है, दुर्लभ है।

अहिवातक पातिल, वह दंतुरित मुस्कान, बहुत दिनो के बाद, गुलाबी चूड़ियाँ, चन्दू मैने सपना देखा, सिन्दुर तिलकित भाल, सुबह-सुबह, लालू साहू, क्रन्दन भी भा सकता है में यायावर नागार्जुन की स्नेहाशिक्त भावनाएँ हिलोरें ले रही हैं-

"तुम्हारी यह दन्तुरित मुस्कान

मृतक में भी डाल देगी जान

---

[9] **नागार्जुन- रचनावली- सं. शोभाकान्त- खण्ड-** 02- **पृष्ठ-** 50-51

[10] **नागार्जुन- प्रतिनिधि कविताएँ- सं.- नामवर सिंह- पृष्ठ-** 101

धूलि-धूसर तुम्हारे ये गात...

-- -- -- --

देखते तुम इधर कनखी मार

और होती जब कि आँखे चार

तब तुम्हारी दन्तुरित मुस्कान

मुझे लगती बड़ी ही छविमान।"[11]

यहाँ सुलभ चेष्टाएँ और पिता का भावविगलित वात्सल्य में 'सूर' का वात्सल्य भाव समाया हुआ है।

पुजारिन भाभी की व्यंग्य धनुष पर पुष्प वाण की मार से जर्जर नागार्जुन का दिल धड़कने लगता है-

"झुक आये कजरारे बादल

कूक उठे मोर

टर्राए मेढ़क

पहुँच कर धीरज की छोर पर

दभ साध लिये धरती ने...

बिजनी की मूठ से खुजलाकर पीठ

पुजारिन भाभी बोली

आँधी आएगी/ बादलों को कहाँ से कहाँ उड़ा ले जाएगी

-- -- -- -- -- --

और मेरा रोआँ-रोआँ हो उठा कंटकित

---

[11] **नागार्जुन- प्रतिनिधि कविताएँ- सं.- नामवर सिंह- पृष्ठ-** 29

और मेरा दिल धड़कने लगा जोरों से

हो उठी तीव्र झींगुरों की रीं रीं रीं

और मैं लगा गया गोता गहराई के अन्दर

झुक आये कजरारे मेघ

और अधिक

और अधिक

और अधिक... ।"[12]

व्यक्ति और सत्ता से संघर्ष करने वाले कवि नागार्जुन की काव्यात्मक दृष्टि अद्भुत है। जिन वस्तु को औरों द्वारा अछूती छोड़ दी जाती है वही नागार्जुन की रचना भूमि बन जाती है। उनकी संवेदना मानव मात्र तक सीमित नहीं रहती। मादा सूअर पर रची उनकी कविता 'पैने-दाँतोवाली' हो अथवा 'अकाल और उसके बाद' की कानीकुतिया, छिपकली, चूहा और कौए आदि, इन पशु-पक्षियों में भी उनकी संवेदना देखकर हम अभिभूत हो जाते हैं। प्रखर आलोचक डॉ. नामवर सिंह उपर्युक्त दृष्टि के विषय में बतलाते हैं- "जो वस्तु औरों की संवेदना को अछूती छोड़ जाती है वही नागार्जुन के कवित्व की रचना भूमि है। इस दृष्टि से काव्यात्मक साहस में नागार्जुन अप्रतिम हैं।"[13]

'पैने दाँतो वाली' की कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं-

"जमना किनारे

मखमली दूबों पर

पूस की गुनगुनी धूप में

---

[12] **नयी कविता और अस्तित्ववाद- डॉ. राम विलास शर्मा, पृष्ठ-** 145-146

[13] **नागार्जुन- प्रतिनिधि कविताएँ- सं.- नामवर सिंह, भूमिका- पृष्ठ-** 05

पसर कर लेटी है

भरे-पूरे बारह थनोवाली...

छौनो को पिला रही दूध

यह भी तो मादरे हिन्द की बेटी है।"[14]

मात्र पशु-पक्षी ही नहीं वरन् चूल्हा, चक्की, धुआँ और आँगन जैसे निर्जीव वस्तु भी मानवीय भावनाओं के वाहक रूप में नागार्जुन के काव्य में चित्रित है-

"कई दिनो तक चूल्हा रोया चक्की रही उदास

कई दिनो तक कानी कुतिया सोई उनके पास -- --

-- -- -- --

दाने आये घर के अन्दर कई दिनो के बाद

धुआँ उठा आँगन के ऊपर कई दिनो के बाद

चमक उठी घर भर की आँखें कई दिनो के बाद

कौए ने खुजलायी पाँखें कई दिनो के बाद।"[15]

औधड़ नागार्जुन का प्रकृति परक रचनाएँ नाद सौन्दर्य के अभिनव काव्य रचना है। वहीं छंदबद्ध रचनाओं में कहीं फूले कदम्ब की छवि, तो कहीं 'धन कुरंग' की चौकड़िया, कहीं हिम आच्छादित पर्वतमाला है तो कहीं 'ऋतुसन्धि' की स्थिति में वर्षा की फुहार की प्रतीक्षा है। प्रकृति के नाना रूपों का वर्णन उनके काव्य का शृंगार है। सर्वप्रथम नाद सौन्दर्य का अवलोकन करें-

---

[14] **नागार्जुन- प्रतिनिधि कविताएँ- सं.- नामवर सिंह- पृष्ठ-** 77

[15] **नागार्जुन- प्रतिनिधि कविताएँ- सं.- नामवर सिंह- पृष्ठ-** 94

"धिन-धिन-धा धमक-धमक

मेघ बजे

दामिनी यह गयी दमक

मेघ बजे

-- --

धरती का हृदय धुला

मेघ बजे

पंक बना हरिचन्दन

मेघ बजे/ हल्का है अभिनन्दन

मेघ बजे/ धिन-धिन... ।"[16]

अनुप्रास की छटा बिखेरती, तत्सम शब्दों से युक्त प्रकृति की छटा देखकर कोई विश्वास करने को तैयार नहीं होगा कि 'शासन की बन्दूक' को अँगूठा दिखाने वाले कवि ऐसे प्रकृति प्रेमी भी हो सकते हैं-

"अमल धवल गिरि के शिखरों पर

बादल को धिरते देखा है।

-- -- -- --

ऋतु वसन्त का सुप्रभात था

मंद-मंद था अनिल बह रहा

बालारूण की मृदु किरणें थी

अगल-बगल स्वर्णिम शिखर थे

-- -- -- --

---

[16] **नागार्जुन- प्रतिनिधि कविताएँ- सं.- नामवर सिंह- पृष्ठ-** 66

शत-शत निर्झर-निर्झरणी कल
मुखरित देवदारू कानन में
शोणित धवल भोज पत्रों से
छाई हुई कुटी के भीतर
-- -- -- --
मृगछालों पर पलथी मारे
मदिरारूण आँखों वाले उन
उन्मद-किन्नर-किन्नरियों को
मृदुल मनोरम अंगुलियों को
वंशी पर फिरते देखा है
बादल को धिरते देखा है।"[17]

कविवर नागार्जुन के काव्य-संसार में विचरण करते हुए ऐसा लगता है जैसे चारों तरफ काव्य के मोती बिखरे पड़े हैं। उनमें से कुछ को चुनने का मेरा प्रयास कहाँ तक सार्थक है यह सुधिजन जानें।

उन्होंने बंगला में कुछ रचनाएँ की हैं। जिस प्रकार 'निराला', 'सरोज' को स्मरण करते हुए कहते हैं-

"दुख ही जीवन की कथा रही,
क्या कहूँ आज, जो नहीं कही।"[18]

उसी प्रकार कविवर नागार्जुन लिखते हैं-

"सारा जीवन असुखे जाबे

---

[17] **नागार्जुन- प्रतिनिधि कविताएँ- सं.- नामवर सिंह- पृष्ठ-** 61-63

[18] **प्रसाद निराला महादेवी पंत की श्रेष्ठ रचनाएँ- सम्पा. वाचस्पति पाठक, पृष्ठ-** 145

कोथाओ कि तुमि आराम पावे

बेलाल्ला होए कोरबि घोरा-फेरा

उत्यक्तो कोरे थाकबन पंडितेरा

थाकबे कि हाथे टाका कोड़ि?

प्रज्ञाइ हबे तोर गलाए दोड़ि!"[19]

नागार्जुन का काव्य संसार के अन्तर्गत संक्षेप में कह सकते हैं कि मैंने सिर्फ मोटे-तौर पर उनकी रचना 'प्रतिबद्ध हूँ' के आधार पर उनकी प्रतिबद्धता, सम्बद्धता और आबद्धता के माध्यम से उनकी रचनात्मक धरातल को छूने का प्रयत्न किया है। 'प्रतिबद्ध हूँ' में उद्घोषित एक-एक शब्द उनके रचना वैविध्य के निर्देश हैं। ओज, प्रसाद और माधुर्य गुणों से विकसित उनका असीम काव्य संसार 'अनेकता में एकता' सदृश्य युग-युग तक "अपने भाषा-शिल्प, ओजस्विता, संघर्षशीलता आदि के लिए समीचीन बने रहेंगें।

"दूर जाकर करीब हो जितने

हम से कब तुम करीब थे इतने

अब न आओगे तुम न जाओगे

वस्ल-ए हिज्राँ बहम हुए कितने...।"[20] ❑

---

[19] **अलाव, सम्पा– राम कुमार कृषक, (डायरी: अपने हिसाब से- शैलेन्द्र कुमार त्रिपाठी) पृष्ठ-** 166

[20] **सारे सुखन हमारे- फैज अहमद फैद, सम्पा- अब्दुल बिस्मिल्लाह** 1978 **बेरुत क्रैफ पृष्ठ-** 394

नागार्जुन का हिन्दी और मैथिली उपन्यास साहित्य में योगदान

हिन्दी और मैथिली साहित्य के संवर्धन में मिथिलांचल के अनेकानेक साहित्यकारों का अनुपम योगदान है। संगोष्ठी में चयनित साहित्यकारों में आधुनिक युग के साहित्यकार नागार्जुन अथवा वैद्यनाथ मिश्र 'यात्री' का योगदान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। आचार्य सोमदेव, राजकमल चौधरी, आर. सी. प्रसाद सिंह, हरि मोहन झा, उदय नारायण सिंह 'नचिकेता', उषा किरण खाँ के साथ-साथ मायानन्द मिश्र, तारानन्द 'वियोगी', प्रफुल्ल कुमार सिंह 'मौन' आदि अनेक साहित्यकार हैं जिनका दोनों ही भाषाओं में साहित्यिक योगदान अविस्मरणीय है।

आधुनिक युगबोध के सजग हस्ताक्षर 'नागार्जुन' अथवा 'यात्री' जी का रचना संसार हिन्दी और मैथिली साहित्य में इर्षेय मानदण्ड है। प्रथमत: मैथिली फिर हिन्दी में उनका लेखन भाषिक दृष्टि से उन्हें कथा सम्राट प्रेमचन्द के समकक्ष... तो ले ही जाते हैं इसके साथ-साथ विषय-वस्तु और भावबोध में वे उनसे भी आगे अति यर्थाथवाद तक पहुँच जाते हैं।

कथासम्राट प्रेमचन्द उर्दू और हिन्दी साहित्य में जिस प्रकार समादृत हैं नागार्जुन उसी प्रकार मैथिली और हिन्दी साहित्य में समादृत हैं। प्रेमचन्द का रचना-संसार गद्य साहित्य तक सीमित है वहीं नागार्जुन गद्य और पद्य दोनों विधा में आधुनिक बोध के मूर्धन्य रचनाकार हैं।

प्रेमचन्द जिस तरह उर्दू से हिन्दी की ओर झुके, नागार्जुन भी मैथिली से हिन्दी में कुछ-कुछ उन्हीं भावभूमि में पदार्पण किया। "मैथिली माँ है, मगर उससे पेट नहीं भरता है...। इसलिए, उसे अपना कलेजा नोच कर चढ़ा देता हूँ।"[21]

आगे चलकर जब उनका हिन्दी साहित्य में दायरा बढ़ता गया, वे मैथिली साहित्य से दूर होते गए। इस सन्दर्भ में वे बतलाते हैं "पिछले पचीस वर्षों से मैं अपनी मातृभाषा (मैथिली) में लिखता आ रहा हूँ। हिन्दी पीछे सीखी है। प्रकाशन संबंधी असुविधाओं के कारण अपनी क्षमता का दशांश भी शायद मैथिली को नहीं दे पाता हूँ। हिन्दी संसार में गोष्ठियों, सभा और सम्मेलेनो के अवसर पर यदा-कदा मित्रों का आग्रह होता है कि अपनी मैथिली रचना भी सुनाऊँ। श्रोतागण मूल मैथिली नहीं समझते हैं और मुझे 'हिन्दी प्रदेश' (हिन्दी भाषी अंचलों) में अपनी मैथिली रचनाएँ पंक्तिश: अनुदित करके ही सुनानी होती है। xx xx xx दिल्ली लखनऊ और इलाहाबाद-बनारस के साथी साहित्यकार इसी कारण मेरी मैथिली रचनाओं का मूल्यांकन नहीं कर पाए हैं अबतक। मैथिली चाहे प्राचीन हो, चाहे अर्वाचीन, हिन्दी वालों के लिए वह आसान नहीं है।"[22]

कविवर नागार्जुन का रचना संसार कई भाषाओं में विभक्त है। संस्कृत रचनाएँ दक्षिण सीलोन की पत्रिका 'करगम' और जोधपुर की 'कौमदी' में कई वर्षों तक प्रकाशित होती रही हैं। बंगला में भी उनकी कविताएँ हैं। उन कविताओं में भी वही स्वर है जो मैथिली अथवा हिन्दी कविताओं में है। यहाँ सिर्फ दो बंगला रचनाओं का उद्धृत करना चाहता हूँ जिसमें नवीन भाव बोध और बाबा की शैली का सहज ही अनुमान हो

---

[21] **जीवकान्त- लहर (नागार्जुन विशेषांक) नवम्वर- 1970, पृष्ठ- 36**

[22] **नागार्जुन रचनावली- खंड- 06**

जाता है। प्रथम कविता है 'सुगंधितो मुर्खेर सारहीन प्रलाप' इस रचना में बोल-चाल की भाषा में उन्होंने एक लेखक की विवशता को प्रदर्शित किया है :-

"काल के विकेल बेलाए:/ सुनते होलो/ पोनरो मिनट पर्यंतोड/ एक जन सुगंधितो मुखेर/ विशृंखलित तो प्रलाप...।

ओ बेचारा शिक्षा विभागेर राज्य मंत्री छिलो/ अमादेर एमन दुर्विपाक।

जे ओर आजे- बाजे कथा सुनते इ होलो लगातार/ पनेरो मिनिट पर्यंतोऽ...।"

महाकवि निराला ने सरोज स्मृति में अपनी दुखद स्थिति (कवि की) का वर्णन किया है-

दुख ही जीवन की कथा रही,

क्या कहें आज, जो नहीं कही।

युग कवि नागार्जुन बंगला कविता 'कवि' शीर्षक में लिखते हैं-

सारा जीवन असुखे जाबे

कोथाओ कि तुमि आराम पाबे

बेलाल्ला होए कोरबि धोरा-फेरा

उत्यक्तो कोरे थाकबेन पंडितेरा

थाकबे कि हाथे टाका कोड़ि?

प्रज्ञाइ हबे तोर गलाए दोड़ि.!

कविवर निराला के बाद कवि जीवन के दुखमय संसार का वर्णन नागार्जुन बंगला में करते हैं। कवि के लिए भाषा जब 'चेरी' हो जाती है तो कबीर, निराला और नागार्जुन जैसे महान विभूतियों का कवि परम्परा विकसित होती है।

कवि और कथाकार नागार्जुन के रचना संसार को हम दो भागों में विभक्त कर दोनों भाषाओं में उनके अमूल्य अवदान को रेखांकित करने का प्रयास करेंगे। प्रथमत: कथा साहित्य में उनके अवदान को हम रेखांकितक करना चाहता हूँ।

हिन्दी कथा साहित्य में नागार्जुन की निम्नांकित कथा कृतियाँ उपलब्ध है-

(क) रतिनाथ की चाची
(ख) बलचनमा
(ग) नई पौध
(घ) बाबा बटेसरनाथ
(ङ) वरुण के बेटे
(च) दुखमोचन
(छ) कुम्भीपाक
(ज) उग्रतारा
(झ) इमरतिया
(ञ) पारो
(ट) अभिनन्दन
(ठ) गरीब दास और
(ड) आसमान में चंदा तैरे (कहानी- संग्रह)
(ढ) विद्यापति की कहानियाँ (अनुदित)

मैथिली में उनके तीन उपन्यास हैं- (क) पारो, (ख) नवतुरिया और (ग) बलचनमा।

कवि एवं कथाकार नागार्जुन का जीवन और साहित्य उनके सत्य पर आधारित है। यही कारण है कि उनके साहित्य में अनेक वैचारिक धरातल है। उन्होंने एक बात-चीत में 'सत्य' को जिस रूप

में परिभाषित की है वही सत्य उनके साहित्य में विद्यमान है। नागार्जुन बतलाते हैं कि "जिस प्रकार 'सोना' आभूषण बनने से पूर्व पूर्णतया शुद्ध होता है, उसी प्रकार सत्य भी व्यवहार में लाने से पूर्व सोने की भाँति शुद्ध होता है। स्वर्णकार आभूषण बनाते समय कुछ न कुछ मिलावट अवश्य कर देता है। ठीक उसी प्रकार जब हम सत्य को व्यवहार में लाते हैं तो उसमें झूठ की मिलावट कुछ न कुछ मात्रा में अवश्य हो जाती है।"[23]

नागार्जुन के कथा साहित्य (उपन्यासों) के विषय-वस्तु को मुख्य रूप से पाँच भागों में विभक्त किया जा सकता है-

(क) युगीन सन्दर्भ
(ख) सामाजिक जीवन
(ग) नारी जीवन
(घ) आर्थिक जीवन
(ङ) राजनीतिक जीवन

नागार्जुन के उपन्यासों में युगीन सन्दर्भ की चेतना प्रबल रूप में विद्यमान है। साहित्य का जन्म देश, काल और परिस्थिति जन्य चेतना से होता है। देश की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, दार्शनिक आदि विचारधाराओं के मध्य साहित्यकार सृजन चेतना ग्रहण करते हैं। यही कारण है कि नागार्जुन की रचनाओं में आदि से अन्त तक परिवर्तन की धारा गतिमान हैं। उन्होंने स्वयं लिखा है "इस बात में अधिक विवाद की गुंजाइश नहीं है कि जिस विशिष्ट राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक तथा साहित्यिक परिवेश में साहित्यकार की चेतना का प्रस्फुटन होता है उससे प्रभावित हुए बिना वह नहीं रह सकता।"[24]

---

[23] **उपन्यासकार नागार्जुन- बाबू राम गुप्त, (श्याम प्रकाशन, जयपुर) पृष्ठ- 14**

[24] **युगधरा- प्रकाशकीय वक्तव्य, यात्री प्रकाशन, इलाहाबाद, 1953**

उपन्यासकार नागार्जुन के उपन्यासों में भारतीय ग्रामीण परिवेश स्वतंत्रापूर्व से लेकर स्वातंत्रोतर काल तक फैला हुआ है। धार्मिक अन्धविश्वास, छुआ-छूत की भवना, अशिक्षित नारी, उसकी दयनीय स्थिति, स्वतंत्रता प्राप्ति हेतु, जनता का संघर्ष आदि का युगानुरूप चित्रण उनके उपन्यासों में सहज ही देखा जा सकता है।

'इमरतिया' उपन्यास में हरिजन के प्रति सहानुभूति दिखलाते हुए उनका पात्र मस्तराम कहता है- "इसी तरह मेहतर भी सफाई का काम कर चुकने के बाद नहा-धो ले, कपड़े बदल ले, फिर हमारे साथ बैठ कर वह पूजा-पाठ में क्यों नहीं शामिल होगा? आत्मा तो एक है, शरीर का चोला अलग-अलग हो सकता है।"[25]

'दुखमोचन' उपन्यास में उन्होंने माया और कपिल का अंतर्जातीय विवाह करवाकर सामाजिक स्तर पर उसे प्रतिष्ठा प्रदान करने की कोशिश करते हैं।

'रतिनाथ की चाची' उपन्यास में गौरी का कथन समय और समाज को दोषी ठहराता है, "जिस समाज में हजारों की तादाद में विधवाएँ रहेंगी वहाँ यही सब होता होगा।"[26]

'नई पौध' और 'पारो' उपन्यासों में अनमेल विवाह की समस्या तथा युवा वर्ग के अन्याय के विरूद्ध लड़ते हुए दिखलाया गया है। 'पारो' की पार्वती, 'रतिनाथ की चाची' में गौरी द्वारा विवश नारी की तस्वीर उभर कर सामने आती है- "हे भगवान, अगले जन्म भले ही मैं चुहिया होऊँ, भले ही नेवला, मगर चेतनामय इस मानव समाज में फिर कभी न पैदा होऊँ।"[27]

---

[25] **नगार्जुन- इमरतिया- पृ. 5**

[26] **नागार्जुन- रतिनाथ की चाची, अभिनव प्रकाशन, पृ- 30**

[27] **नागार्जुन- रतिनाथ की चाची- पृ- 147**

'उग्रतारा' की 'उगनी' जहाँ शिक्षा के महत्व प्रतिपादित करते हुए 'विद्या' को तीसरी आँख की संज्ञा देती है, वहीं कुंभीपाक में नारी के आत्मविश्वास और नारी की साझीदारी की वकालत की गयी है।

'बाबा बटेसरनाथ, बलचनमा, पारो, दुखमोचन उपन्यासों में नागार्जुन ने आडंबरों, रीति-रिवाजों, सनातन परंपराओं, रूढ़ियों, जाता-पाँत तथा धर्मिक अंधविश्वासों के विरूद्ध जमकर प्रहार किया है। रतिनाथ को जब राउत संध्या बन्दना जल्दी-जल्दी करते देखता है तो कहता है- "तुम तो नील माधव के वंशधर हो, तुम्हें इतनी जल्दी नहीं करनी चाहिए।" तो रतिनाथ उत्तर देता है- "अरे यहाँ कौन देखता है? देखना चलकर तरकुलवा में घंटाभर नाक न दबाये रहा, तो जो कहो।" राउत ने मुस्कुरा कर कहा- "लो बाप के गुण सीख न गये।"[28]

बाबा ने बाबा बटेसर नाथ में धार्मिक अंधविश्वासों एवं सामाजिक कुरीतियों पर सीधा प्रहार किया है- "मनुष्यों की बलि चाहने वाले यक्ष-गंधर्व, देव- देवियाँ और ब्रह्म अब बाहर नहीं रह गये- मोटी जिल्दों वाले पुराने पोथी की बारीक पंक्तियों के अन्दर आज वे नजरबंद हैं।"[29]

इस प्रकार उपन्यासकार नागार्जुन ने अपने उपन्यासों में युगानुरूप समाज की विविध परिस्थियों से उत्पन्न विविध समस्याओं को दर्शाते हुए उनके समाधान हेतु उपाय भी बतलाए हैं। उन्होंने बतलाया कि जब तक समाज में व्याप्त अंधविश्वास, सामाजिक कुरीतियों, धार्मिक आडम्बरों को दूर नहीं किया जाता तबतक नवीन समाज का निर्माण नहीं किया जा सकता।

सामाजिक जीवन :-

नागार्जुन ने उपन्यासों में मिथिला के अंचल-विशेष के

---

[28] **नागार्जुन- रतिनाथ की चाची- पृष्ठ- 55**

[29] **नागार्जुन- बाबा बटेसर नाथ, द्वि. संस्करण- 1971, पृष्ठ- 71-72**

ग्रामीण जीवन का चित्रण कर वहाँ की समस्याओं का उद्घाटन करने का प्रयास किया है। उनके उपन्यासों में मिथिलांचल की संस्कृति, लोक जीवन, परम्पराओं, रूढ़ियों, अंधविश्वासों, बोलियो के साथ-साथ परिवर्तन की नई दिशाओं का सुन्दर समन्वय देखने को मिलता है।

नागार्जुन ने अपने प्रथम उपन्यास 'रतिनाथ की चाची, में शुभंकरपुर गाँव के रूढ़िवादी, अभाव, अज्ञान, बाह्याडम्वर से ग्रस्त ग्राम वासियों का प्रामाणिक चित्र उपस्थित करने की कोशिश की है। गौरी देवर की कलुषित मनोवृत की शिकार होकर जिस प्रकार अपमानित और प्रताड़ित होती है वह मिथिला की विधवाओं का यथार्थ स्वरूप को प्रतिबिम्बित करती है।

बलचनमा नागार्जुन का दूसरा प्रतिनिधि उपन्यास है। इस उपन्यास में साधनहीन, निर्धन अभाव के पर्याय कृषक जीवन का उद्घाटन किया गया है। जमींदारों के लगातार शोषण और दमन के विरूद्ध उभरती प्रतिहिंसा आदि को महत्वपूर्ण स्वर दिया गया है। ललनचनमा द्वारा मालिक के बाग से दो आम तोड़ने के कारण मालिक द्वारा दी गयी सजा का लोमहर्षक दृश्य अत्यन्त कारुणिक और हृदय विदारक है- "मालिक के दरवाजे पर मेरे बाप को एक खंभेली (पतला खंभा) के सहारे बाँध दिया गया है। जाँध चूतर पीठ और बाँह- सभी पर बाँस की हरी करची के निशान उभर आये हैं। चोट से कहीं खाल उधड़ गयी है और आँखों से बहते आँसुओं के टघार (बहाव) गाल और छाती पर से नीचे चले गये हैं। चेहरा काला पड़ गया है। x x x x यमराज की भाँति मझले मालिक बैठे हुए हैं। x x x x उनकी वह लाल और गहरी आँख कितनी डरावनी है, बाप रे..!"[30]

बाबा बटेसर नाथ में नागार्जुन ने गाँव के सामाजिक, आर्थिक,

---

[30] **नागार्जुन- बलचनमा- पृष्ठ- 03**

राजनीतिक सघर्षों, उसके उत्थान-पतन पर सम्यक प्रकाश डालने की कोशिश की है। ग्रामीण कथाकार के रूप में बाबा बटेसर नाथ की आत्मीयता अनुपम है- इस विषय में महेन्द्र चतुर्वेदी की टिप्पणी द्रष्टव्य है- "कथा कहने के ढंग की आत्मीयता तथा प्रत्यक्षता से गाँव मानो जी उठा है- उसकी प्रथायें- परम्परायें, अंध-श्रद्धा, उपासना-पद्धति, पशु-बलि आदि के तरीके सब हमारे सामने प्रत्यक्ष हो उठते हैं। इन्हीं सब सहज नैसर्गिक निरूपणों के बीच लेखक ने काँग्रेसी शासन की व्यंग्यात्मक आलोचना का भी अवसर निकाल लिया है।"[31]

'वरूण के बेटे' उपन्यास में 'मलाही-गोंढ़ियारी' के मछुओं की दीनता, जमींदारों द्वारा बेदखली तथा इसके विरूद्ध मछुओं का संगठित संघर्ष की कथा है।

'नई पौध' में बिससेरी और चतुरा चौधरी के बीच अनमेल विवाह का विरोध और एक युवक द्वारा बिससेरी से विवाह हेतु आगे बढ़ने की कथा है। 'सौराठ सभा' में शादी-विवाह की सौदेबाजी, मधुबनी न्यायालय, चीनी और मिट्टी तेल के वितरण में धाँधली आदि सामाजिक विषयों को इसमें सुन्दर स्वरूप दिया गया है।

'पारो' उपन्यास में भी लगभग नई पौध के विचारों को विस्तार दिया गया है।

'दुखमोचन' उपन्यास में 'टभका कोइली' गाँव के नव निर्माण में 'दुखमोचन' की भूमिका देखते ही बनता है। उसने अंधविश्वासों को तोड़ते हुए नवीन परम्परा की शुरूआत की है।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि नागार्जुन के उपन्यासों में सामाजिक जीवन के विविध पक्षों का सांगोपांग वर्णन है।

---

[31] **महेन्द्र चतुर्वेदी- हिन्दी उपन्यास- एक सर्वेक्षण- पृ. 210**

नारी जीवन :-

नागार्जुन के उपन्यासों में मिथिलांचल के नारी जीवन की व्यथा-कथा का विविध रूप करुणा से आप्लावित है। उन्होंने नारी को विविध रूपों में रूपायित किया है। माँ, बहन, बेटी, पत्नी, सास, बहू, भाभी, ननद तथा विधवा रूपों में नारी के अनुपम चरित्रों का नागार्जुन के उपन्यासों में सुन्दर तथा कारुणिक चित्र मिलते हैं।

नागार्जुन के समग्र उपन्यासों में नारी जीवन के विविध पक्षों का सम्यक रूप में चित्रण हुआ है। उन्होंने विधवा जीवन के दारूण दुख को विविध उपन्यासों में बार-बार वर्णन किया है। उनके उपन्यासों की मूल प्रेरणा में शायद समाज द्वारा प्रताड़ित नारी है। उनका समग्र उपन्यास साहित्य नारी उद्धार की प्रबल कामना से अनुप्राणित है।

'रतिनाथ की चाची' की गौरी दमयंती, 'बलचनमा' की माँ और दादी, 'नई पौध' की रामेसरी दुखमोचन की मामी, 'कुंभीपाक' की चंपा, 'उग्रतारा' की उगनी, 'पारो' की पार्वती, 'इमरतिया' की इमरतिया हीरक जयंती की मंजुमुखी वरूण की बेटे की मधुरी आदि अनेकानेक स्त्री पात्र हैं। नागार्जुन अपने उपन्यासों में माँ-पुत्र, बहन-बहन, बहन-भाई, पति-पत्नी, सास-बहू, ननद-भाभी, देवर-भाभी, चाची-भतीजा आदि विविध संबन्धों के माध्यम से नारी के त्याग और बलिदान को रेखांकित किया है।

समाज द्वारा मिथिलांचल में शोषित और प्रताड़ित होती स्त्री समुदाय का ऐसा लोम-हर्षक चित्र नागार्जुन के अतरिक्त अन्यत्र दुर्लभ है। विधवा जीवन की करुण कथा का जिस रूप में नागार्जुन ने अपने उपन्यासों में वर्णन किया है वह निश्चित रूप से जीवन के यथार्थभूमि से निर्मित है।

मैं नारी जीवन के एक-दो उद्धरण के माध्यम से नागार्जुन के उपन्यासों में वर्णित नारी चरित्र को दिखलाते हुए इस अध्याय को विराम

दूँगा।

"माँ का झोंटा पकड़ लिया। वह बेचारी इस आकस्मिक आक्रमण से चकित थी ही कि इसी बीच लड़के ने उसकी पीठ पर आठ-दस लात गदागद जमा दिये। चाची ऐंच कर रह गयी। उसे यह समझते देर न लगी कि दमयंती ने उमानाथ का कान भरे हैं। अपने आँसू, अपनी आह- चाची सब पी गयी।"[32]

बलचनमा की माँ उसे सीख देते हुए कहती है- "बबुआ बालचन! मर जाना लाख गुना अच्छा है मगर इज्जत का सौदा करना अच्छा नहीं।"[33]

'पारो' उपन्यास में पार्वती अनमेल विवाह पर असंतोष प्रकट करते हुए कहती है- "मगर जिसे कुछ भी कहने का हक नहीं है उसके लिए जैसा पैंतीस वर्षों का वर वैसा ही पैंतालीस वर्षों का। लंगड़ा रहे या काना, कोढ़ी रहे या पगला, बूढ़ा हो या प्रौढ़ पति साक्षात परमेश्वर होता है, यह शिक्षा तो अपने यहाँ छुटपन से औरतों को मिलती है।"[34]

काशी निवास करने वाली विधवा सुशीला जय नाथ से कहती है- "तुम जिस जाति में, जिस समाज में पैदा हुए हो, वह जिंदा नहीं मुर्दाघर है, वह झाड़न है, x x x x।" पुन: गौरी की माँ कहती है- "जिस समाज में हजारों की तादाद में जवान विधवाएँ रहेंगी, वहाँ यही सब होगा...।"[35]

कथाकार नागार्जुन नारी-जीवन और उससे संबंधित अनेक महत्वपूर्ण समस्याओं का निरुपण और युग सापेक्ष समाधान भी प्रस्तुत

---

[32] **नागार्जुन- रतिनाथ की चाची- पृष्ठ- 77-78**

[33] **नागार्जुन- पारो- पृष्ठ- 50**

[34] **रतिनाथ की चाची- पृष्ठ- 30**

[35] **नागार्जुन- कुंभीपाक- पृष्ठ- 81**

किये हैं।

राजनीतिक जीवन के विविध पक्षों को भी नागार्जुन ने वरुण के बेटे, बाबा बटेसरनाथ, हीरक जयंती, कुभीपाक आदि उपन्यासों में वर्णन किया है। नागार्जुन के गद्य और पद्य साहित्य में राजनीति के विविध रूप विद्यमान है। 'कुभीपाक' में वे बतलाते हैं- "15 अगस्त 1947 से पहले का वह राजनीतिक मैदान बहुत बदल गया है। दाँव-पेंच बदल गये हैं। बोली बदल गयी है। इशारा बदल गया है। खिलाड़ियों की नीयत बदल गयी है, ... पहले वाला वह लक्ष्य जाने किधर ओझल हो गया है? हँ, इतना तो है कि हर बुरे-भले काम में महाप्रभुओं का साथ देते रहोगे तो भौतिक लाभ अवश्य होगा।"[36]

इस प्रकार नागार्जुन का समग्र उपन्यास साहित्य में मानवीय जीवन के विविध आयामों का यथार्थवादी चित्रण हुआ है।

मैथिली भाषा में नागार्जुन के तीन उपन्यास हैं-

(क) पारो

(ख) नवतुरिया और

(ग) बलचनमा

उपर्युक्त उपन्यासों में विषय-वस्तु, पात्र परिकल्पना, परिवेश आदि हिन्दी के समान ही हैं। उपर्युक्त उपन्यासों में विर्णित विविध सन्दर्भों का विषद विवेचन किया जा चुका है। मैथिली भाषा में लिखित तीनों उपन्यासों की भाषिक भाव-भंगिमा अत्यन्त आकर्षक एवं मनोहारी है। 'नवतुरिया' उपन्यास से उद्धृत निम्न पंक्तियों में मैथिली भाषा कासुन्दर रूप द्रष्टव्य है, जहाँ मिथिलांचल की रूढ़िवादी परम्परा, लाचारी पर नागार्जुन व्यंग्य कर रहें हैं "बाबा बैद्यनाथक अनुकम्पा भेलइन्ह त एहि वरक प्रतापेँ विशेश्वरी केँ एक सँ एकइस हैतैक। पाँच सय बीघा खेतक मलिकाइन

---

[36] **नागार्जुन- कुंभीपाक- पृष्ठ- 81**

बनत ग हमर विश्वेश्वरी। इहलोक आकी परलोक- दूनू ठाम रानी कहाओति- हमर वृद्ध प्रमातामह एहि आयु में विवाह कैलन्हि, बारह बरखक कन्या सँ। आ तखन हुनका चारिटा पुत्र तीन टा पुत्री भेल रहथिन्ह अर्जुन भीमसन बलिष्ठ आ द्रौपदी एवं सुभद्रा सन सुन्दरी ओजस्विनी। एहन सद्पात्र हमरा आन ठाँ भेटत। किन्नहु नहि। शुभस्थ शीघ्रम्- गणेश। गणेश। लम्बोदर.!"[37]

मैथिली आलोचना साहित्य में वैद्यनाथ मिश्र यात्री की भाषा शैली के विषय में मन्तव्य देते हुए डॉ. दिनेश कुमार झा लिखते हैं- "आलोच्य कालक श्रेष्ठ उपन्यासकार लोकनि शैलीक दृष्टिसँ अपन कृतिक संगठित, सुशृंखलित तथा संगतिपूर्ण कथानक संग पाठकक कौतुहल कैँ समाप्ति पर्यन्त जाग्रत कयने रहबाक हेतु साधारणतया भाषाक व्यावहारिक रूपक उपयोगक पक्ष मे छथि। एहि शैलीक पक्षधर यात्री, मायानन्द, धीरेन्द्र, ललित... प्रभास कुमार चौधरी/ दैनिक जीवनमे व्यवहृत शब्दावली, लोक प्रचलित उपमान, मोहाबरा, लोकोक्ति, वाग्धारा आदिक उपयोग करैत एहन भाषाशैली उपन्यासक गतिकैँ अपूर्व स्वाभाविक, सरलता एवं स्वच्छताक संग संचरित करैत रहैत अछि।"[38]

एक उदाहरण द्रष्टव्य है- "चतुर्भुज समर्थाइए मे मुइल रहथि। मूर्खता, दरिद्रता, दस कटठा ऊसर खेत आ आठ धूर डीह- उत्तराधिकारक नामें पिता, पितामह, प्रपितामह लोकनिसँ बेचारे एतबे सम्पति प्राप्त कयने छलाह। बारहे बरखक रहथि तइखन लहेरियासराय केर कोनो होटल मे अग्निहोत्रीक ट्रेनिंग लेबए लागल छलाह। पाछाँ/ प्रथम श्रेणीक भनसीया भऽ कऽ ओतय सँ बहरएला।"[39]

---

[37] **वैद्यनाथ मिश्र यात्री- नवतुरिया- मैथिली साहित्यक इतिहास- डॉ. दिनेश कुमार झा- मैथिली अकादमी, पटना द्वितीय संस्करण- 1989, पृष्ठ- 281**

[38] **डॉ. दिनेश कुमार झा- मैथिली साहित्यक इतिहास, पृष्ठ- 287-88**

[39] **डॉ. दिनेश कुमार झा- साहित्यिक इतिहास- डॉ. दिनेश कुमार झा- मैथिली अकादमी, पटना नवतुरिया (यात्री पृष्ठ- 288**

नागार्जुन के उपन्यास कला के विषय में एक संक्षिप्त परिचय डॉ. दुर्गानाथ झा 'श्रीश' ने अपने 'मैथिली साहित्यक इतिहास' में दिया है। मुझे इतिहास ग्रंथों में नागार्जुन के गद्य साहित्य की समीक्षा देखकर कुछ विस्मय होता है। हिन्दी साहित्य में नागार्जुन के कथा एवं काव्य पर अनेकानेक आलोचना ग्रंथ लिखे जा चुके हैं। उन ग्रथों में 'नवतुरिया', 'पारो' और 'बलचनमा' के कथ्य, विषय-वस्तु, पात्र-परिकल्पना, परिवेश और प्रासंगिता पर विषद् विवेचन किया गया है। पर डॉ. श्रीश बतलाते हैं कि नवतुरिया की समस्या विगत युग समस्या है- "हिनक 'नवतुरिया' व्यंग्योक्ति, हास-परिहास, उपमा-उत्प्रेक्षा सब दृष्टिएँ आकर्षक अछि। परन्तु ओ जाहि समस्या पर उपन्यास लिखने छथि, से आब विगत युगक समस्या थिक।"[40]

वे 'बलचनमा' उपन्यास के विषय में भी बहुत संक्षिप्त टिप्पणी में बतलाते हैं कि नागार्जुन इस उपन्यास में चमत्कार नहीं उत्पन्न कर सकें। "बलचनमा मे यात्री जी अपन चमत्कार उत्पन्न नहि कए सकलाह अछि। जकरा हेतु ई प्रसिद्ध छथि, कारण भाषापरिवर्त्तनक संग एकर आंचलिक-तत्व समाप्त भए गेलैक अछि, जाहि हेतु ई हिन्दी साहित्य में बड़ प्रसिद्ध भेल छल।"[41]

मैं कथाकर नागार्जुन के उपन्यासों के विषय में उपर्युक्त समीक्षा पढ़कर मर्माहत हूँ। कारण मिथिलांचल के जिन समस्याओं का वर्णन 'नवतुरिया' उपन्यास में विर्णित है, उन समस्याओं का निदान आज भी सम्भव नहीं हो सका है। सौराठ सभा आज भी लगता है। विवाह ठीक करने के लिए 'घटक' आज भी वहाँ कार्यरत हैं। दहेज का दानव आज

---

[40] **डॉ. श्री दुर्गानाथ झा 'श्रीश' मैथिली साहित्यक इतिहास, परिवर्द्धित संस्करण- 1991, पृष्ठ- 342**

[41] **डॉ. श्री दुर्गानाथ झा 'श्रीश'- मैथिली साहित्यक इतिहास, पृष्ठ- 346**

और विकराल रूप धारण कर चुका है। आज भी विधवा का पुनर्विवाह वर्जित है। आज भी सैकड़ो 'विसेसरी' अपने-अपने भाग्य लेखा सुधारने हेतु, शिव, गौड़ी, भगवती आदि को प्रसन्न करने के लिए व्रत-उपवास कर रही है।

अतएव 'नवतुरिया' और 'पारो' उपन्यासों में जिन समस्याओं को उभारने का प्रयत्न यात्री जी ने की है उसका समाधन निकट भविष्य में सम्भव नहीं दीखता। अत: मेरे मतानुसार 'नवतुरिया' की प्रासंगिकता आज भी कायम है। दूसरी समस्या विगत युग की समस्या नहीं है।

जहाँ तक 'बलचनमा-' के आंचलिक तत्व समाप्त होने के कारण मैथिली में उसके 'फॉर्म' पर प्रश्न चिह्न लगाया जा रहा है, यह भी एक महत्वपूर्ण मुद्दा है। उपन्यास साहित्य का मूल्यांकन उसके कथ्य, (कथा), पात्र परिकल्पना, कथोपकथन, देश-काल, भाषा-शैली और उद्देश्य पर आधारित होता है। बलचनमा की भाषिक संरचना में इतना विकार नहीं है जितना कि डॉ. 'श्रीश' बतलाते हैं।

सारांगत: कथाकर नागार्जुन के कथा साहित्य में जो साकार चरित्र और कथानक हमें देखने को मिला है उसमें मानवीय त्रासदी की दास्तान सर्वत्र विद्यमान है। उन्होंने अपने विस्तृत अनुभव और विचारों को बहुत बड़े केनवॅस पर उतार कर भारतीय गाँवों और शहरों की मानवीय पीड़ा, संघर्ष, और उसे झेलते मानव महासागर के उताप को अपने उपन्यास साहित्य में रूपायित किया है। 'रतिनाथ की चाची' मात्र शुभंकर पुर की ही नहीं वरन् समग्र भारतीय संस्कृति और साहित्य की प्रताड़ित, अपमानित विधवा समुदय की नारी है।

नागार्जुन के समग्र कथा साहित्य में 'ग्राम-चेतना', 'जन-चेतना' रूपमें विकसित है। अन्त में हम कह सकते है कि नागार्जुन का मैथिली और हिन्दी उपन्यास साहित्य जन-चेतना और जन विश्वास का साहित्य

है। प्रभाकर श्रोत्रिय' ने सही मूल्यांकन करते हुए बतलाया है- "नागार्जुन की सांस में गुंथे जीवन को बाबा बटेसरनाथ में देख सकते हैं, जहाँ फेंटेसी के माध्यम से ग्राम देवता 'वट' को जनचेतना और जन-जागरण का माध्यम बनाकर नागार्जुन ने एक ओर जन-विश्वास को आदर दिया है वहीं उसे जन-चेतना में इस्तेमाल किया है।"[42]

हम पाते हैं कि नागार्जुन अथवा 'यात्री' का हिन्दी और मैथिली गद्य साहित्य में अविस्मरणीय योगदान है। ❑

---

[42] **प्रभकर श्रोत्रिय- 'जन के पूरे जीवन में शामिल नागार्जुन' आजकल- जून अंक- 1911- पृष्ठ- 09**

हिन्दी भाषा की उपलब्धियाँ, चुनौतियाँ और समस्याएँ

हिन्दी भाषा की उपलब्धियाँ और चुनौतियाँ समानान्तर चल रही हैं। हिन्दी भाषा अपने उत्पत्ति और विकास के साथ लगातार चुनौतियों का सामना करती हुई आज विश्व-पटल पर अपना अस्तित्व सिद्ध कर चुकी है। परन्तु आज भी इसके सामने अनेक चुनौतियाँ और समस्याएँ विद्यमान हैं। हिन्दी भाषा आज केवल विचार, भावना, इच्छा के ज्ञापन का साधन मात्र नहीं रह गयी है, न ही यह केवल अपनी अस्मिता बचाने का सामाजिक प्रतीक ही। आज हिन्दी भाषा मानव की काव्यात्मक, आध्यात्मिक, वैचारिक सृजन के साथ-साथ संचार माध्यमों के विविध क्रियाकलापों, की भाषा बन चुकी है। जीवन के विविध क्षेत्रों में इसकी भूमिका महत्वपूर्ण हो गई है।

भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन के समय तत्कालीन राष्ट्रीय नेताओं, समाज-सुधारकों, शिक्षा शास्त्रियों तथा साहित्यिकों ने हिन्दी को सम्पर्क भाषा बनाने हेतु सर्वथा योग्य माना। लोक मान्य तिलक का गर्वीला नारा "स्वराज्य हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है।" हिन्दी भाषा की शक्ति, स्वभाव और प्रभाव का प्रमाण है। महात्मागाँधी, तिलक, लाला लाजपत राय, पंडित मालवीय, राजर्षि पुरुषोत्तमदास, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, सेठ गोविन्द दास, काकाकालेलकर, बंकिम चन्द्र चटर्जी, रविन्द्र नाथ टैगोर, राजा राम मोहन राय, दयानन्द सरस्वती आदि ने एक स्वर से हिन्दी भाषा

को संपर्क भाषा के साथ-साथ समस्त हिन्दुस्तान में बोली जानेवाली भाषा के रूप में मान्यता दी।

अन्ततः २६ जनवरी १९५० ई. को पहलीबार हिन्दी को राष्ट्रीय धरातल पर राजभाषा के रूप में संवैधानिक मान्यता प्राप्त हुई। भारतीय संविधान के अनुच्छेद ३४३ के अनुसार "संघ की राज भाषा हिन्दी और लिपि देवनागी होगी।" यह हिन्दी भाषा की महत्ती उपलब्धि है।

हिन्दी भाषा की सबसे बड़ी चुनौती आज राष्ट्र भाषा बनने की है। समस्त भारत के द्वारा स्तुत्य भाषा रहते हुए भी यह अपने देश की भाषा आज तक नहीं बन पायी। साठ वर्षो के बाद भी यह मात्र राजभाषा ही है।

आज सम्पूर्ण भारत वर्ष में प्राथमिक शिक्षा से लेकर उच्च शिक्षा तक विविध भारतीय भाषाओं के साथ-साथ अंग्रेजी भी हिन्दी भाषा के विकास में वाधा उपस्थित कर रही है। दक्षिण पश्चिम भारत के साथ-साथ बंगाल, उत्तर पूर्वी प्रदेशो में तमिल तेलगु, मलयालम, कन्नड़, उड़िया, मराठी, बंगला, असमी आदि अनेक भारतीय भाषाएँ हैं जिनके माध्यम से विविध प्रदेशों में प्राथमिक से माध्यमिक कक्षाओं तक शिक्षा दी जाती है। उच्च कक्षाओं में अंग्रेजी भाषा का अधिपत्य है। प्रादेशिक भाषा के प्रति अत्यधिक लगाव के कारण उन प्रदेशों के लोग और सरकारें हिन्दी भाषा के प्रति विशेष रूचि नहीं दिखलातीं। इस प्रकार हिन्दी उन प्रदेशों में आज भी उपेक्षित है।

हिन्दी भाषा-भाषी क्षेत्रो में भी छात्रों को अंग्रेजी भाषा की विशिष्टता को दर्शाते हुए अंग्रेजी भाषा के गुलाम, छात्रों को अंग्रेजी की ओर उन्मुख कर रहे हैं। परिणाम स्वरूप हिन्दी में पुस्तक उपलब्ध रहने पर भी छात्र विविध प्रतियोगिता परीक्षाओं के भय से अंगरेजी की ओर हीं आकृष्ट हो रहे हैं।

सन १९४९-५० के आस-पास अंगरेजी समर्थक वर्ग कहते थे कि

हिन्दी भाषा में विज्ञान, वाणिज्य अथवा समाजशास्त्र की पुस्तकें न तो उपलब्ध है न हीं इसे लिखा ही जा सकता है। आज वे बातें इतिहास बन चुकी हैं। आज समस्त विषयों की पुस्तके हिन्दी में उपलब्ध है। हिन्दी प्रदेशों के अधिकांश सरकारी विद्यालयों एवं महाविद्यालयों में अध्ययन और अध्यापन का कार्य हिन्दी भाषा में ही हो रहा है। आज भारत की आधी से अधिक जनसंख्या हिन्दी के साथ है। हिन्दी नित नयी-नयी विषयों और विधाओं की पुस्तकों से सुसज्जित हो रही है।

शिक्षा के क्षेत्र में न केवल देश वरण् विदेशों में भी आज हिन्दी भाषा विभिन्न विश्वविद्यालयों पढ़ी और पढ़ायी जा रही है। जापान, जर्मनी, चीन, मारिशस, फिजी, फ्रांस, नेपाल, दक्षिण अफ्रीका आदि अनेक देश हैं जहाँ हिन्दी और हिन्दी भाषा के विकास हेतु प्रवासी भारतीय विद्वानों के साथ-साथ उन देशों के हिन्दी भाषा के विद्वतजन भी प्रयत्नशील हैं। वर्गो में अध्यापन के साथ-साथ वे पत्र-पत्रिकाओं एवं साहित्य की रचना कर हिन्दी के विकास में अमूल्य योगदान दे रहे हैं। इस क्रम में अनेक हिन्दी भाषा और साहित्य के छात्र यहाँ आकर अध्ययन और शोध कार्य में लगे हैं।

हिन्दी की अनेक उपलब्धियो में यह भी महत्वपूर्ण है।

हिन्दी भाषा भाषियों की जनसंख्या विस्तार एवं हिन्दी की संघर्ष क्षमता ने समस्त भारतीय भाषाओं को पीछे छोड़ते हुए बहुत आगे बढ़ चुकी है। रेडियो और दूरदर्शन के विविध स्टेशनों से हिन्दी में जितने कार्यक्रम प्रस्तुत किये जाते हैं उसके मुकाबले अनेक भारतीय भाषाएँ मिलकर भी पीछे रह जाएँगी। समाचार प्रसारण के साथ-साथ अनेक ऐसे धारावाहिक कार्यक्रम है जो देश में ही नहीं वरण् विदेशों में भी समान रूप से देखी और सराही जाती है।

आज हिन्दी भाषा वैश्विकीकरण के दौड़ में प्रवेश कर चुकी है।

धीरे-धीरे विश्व वाजार में हिन्दी भाषा अपनी भाषीक क्षमता के कारण विज्ञापन की पहचान बनती जा रही है। विज्ञापन और विज्ञापनी हिन्दी के विषय में विचार वयक्त करते हुए हिन्दी भाषा के विद्वान सत्यदेव त्रिपाठी बतलाते हैं कि- "आज के युग का वसंत व्यवसाय व व्यापार यानी बाजार है। और इस बाजार के बसंत का अग्रदूत है विज्ञापन।"

.....हिन्दी की उपलब्धि यह है कि इस बाजार में भी वह बाजारू नहीं हुई है। माल बेचने का माध्य बनी है, पर बिकाऊ नहीं हुई है। परन्तु जीवन मूल्यों के अवमूल्यन व संस्कृतियों की वर्णसंकरता के बीच इन रूपों से कैसे बच सकती है हिन्दी।"[43]

वस्तुत: रेडियो, दूर-दर्शन, पत्र-पत्रिकाएँ आधुनिक बाजार के सबसे बड़े प्रचारक है। बाजार का महत्व खरीददार से है, जो खरीदने वाले हैं वे हिन्दी बोलते और समझते है। आधुनिक युग विज्ञापन अथवा प्रचार का युग है। विज्ञापन की भाषा हिन्दी होगी तो हिन्दी वाले खरीददार बनेगे। हिन्दी बोलने वाले खरीददारों के पास उत्पादकों को आना होगा। हिन्दी आज इस रूप में अपनी पकड़ बना चुकी है।

हिन्दी में आज विज्ञापन के कारण अपसंस्कृति भी फैल रही है। विज्ञापन की भाषा साहित्य की भाषा से अलग होती है। जो भाषा विज्ञापन बेचने में सफल है वही भाषा सफल है। इस दृष्टि से विज्ञापन में भाषा की शुद्धता की अपेक्षा नहीं की जा सकती। आज की संस्कृति मिश्रण की संस्कृति बन गयी है। दैनिक जीवन में अंग्रेजी शब्दों का हम धड़ल्ले से प्रयोग कर रहे हैं। हम लोग पेंट-शर्ट-ड्रेस पहनते हैं। मम्मी-पापा से बातें करते हैं। स्कूल-कॉलेज में पढ़ते हैं। सड़क पर नही 'रोड' पर चलते हैं। आल्ता के बदले 'नेल पालिश' लगाते हैं। डबल-बेड, डाइनिंग

---

[43] **संचार माध्यमों के विज्ञापन में हिन्दी-श्री सत्यदेव त्रिपाठी- ज्ञानोदय अंक २१-नवम्बर-२००४, पृष्ठ ७४।**

सेट, सोफा कम बेड का बिग सेल' लगाते हैं।

हिन्दी के सामने बाजार की चमक-दमक है तो इसके कारण भाषा में आने वाली अशुद्धियाँ भी हैं।

आज हिन्दी भाषा का विकेन्द्रीकरण हो रहा है। आर्थिक जगत में यह काफी आगे बढ़ चुकी है। राजनीति के क्षेत्र में भी यह धीरे-धीरे आगे बढ़ रही है। हिन्दी भाषी प्रदेशों में जब दक्षिण पश्चिम अथवा पूरब क्षेत्र के राजनेता आते हैं तो हिन्दी में भाषण देना उनकी लाचारी बन जाती है। स्वार्थ के कारण ही सही आज जो संसद में हिन्दी के विरोध में खड़े होते हैं वही हिन्दी प्रदेशों में हिन्दी में बोलते हैं। भारतीय संसद में आज हिन्दी की स्थिति मजबूत हुई है।

सामाजिक तथा सांस्कृतिक क्षेत्र में हिन्दी विकसित हो रही है। भारत के विविध प्रदेशों में हिन्दी भाषी अपनी भाषा और संस्कृति लेकर जाते हैं। देश-विदेश में आज हिन्दी भाषा विकसित हो रही है। इसके प्रभाव के कारण हिन्दी भाषा समझने और बोलने वालों की संख्या बढ़ी है परन्तु भाषा के क्रियारूप, काल, बचन, लिंग आदि बिखर रहे हैं। चीन के हिन्दी विद्वान- ज्यांग जिंगकुई का मानना है- "आप जो बोलते हैं उस में व्याकरण जरूरी नहीं है परन्तु लिखते समय उसका ध्यान रखना जरूरी है। बोलते समय आप कह सकते हैं 'मैं कहा' लेकिन लिखते समय इसे आपको लिखना चाहिए 'मैंने कहा'।

बोलते समय तो हम बातों का अन्दाज लगा लेते हैं। लिखते समय ऐसा नहीं चलता।"[44]

भाषा के विकेन्द्री करण के कारण इसके स्वरूप में कुछ विखराव आ रहा है। देश काल और परिवेश जनित कारणों से इसमें आनेवाले

---

[44] **विदेशों में हिन्दी, मानक रूप कैसे बनाएँ- पंचायत- समन्वयक-शरद चन्द्रा एवं प्रभाकर श्रोत्रिय, ज्ञानोदय अंक-२२, फरवरी- २००४, पृष्ठ-३९।**

परिवर्त्तनों पर ध्यान देना आत्यावश्यक है।

न्यायपालिका एवं प्रशासनिक क्षेत्र में हिन्दी आज भी बहुत पीछे है। संविधान निर्माताओं ने प्रशासन तथा न्यायालयों में हिन्दी भाषा के प्रयोग हेतु निर्देश दिया। परन्तु उच्च तथा सर्वोच्च न्यायालयों में आज भी हिन्दी की स्थिति बेहतर नहीं है। प्रशासनिक क्षेत्र में पदाधिकारियों को हिन्दी समझने हेतु विशेष प्रशिक्षण के साथ-साथ परीक्षाएँ ली जाती हैं। हिन्दी में वे किसी प्रकार बोल तो लेते हैं परन्तु आदेश निर्देश अंग्रेजी में ही देते हैं।

हिन्दीत्तर क्षेत्रों में न्यायालय एवं कार्यालयों में हिन्दी भाषियों को भी अंग्रेजी अथवा प्रादेशिक भाषाओं में ही आवेदन देना पड़ता है। आदेश भी वहाँ उन्हीं भाषाओं में मिलती है।

विश्व स्तर पर हिन्दी को प्रतिष्ठा दिलाने हेतु पूर्व प्रधानमंत्री माननीय अटल बिहारी वाजपेयी ने राष्ट्रसंघ में पहलीबार हिन्दी में अपना वक्तव्य दिया। परन्तु राजनीतिक दाँव-पेंच के कारण अन्य प्रधान मंत्री हिन्दी से बचने की कोशिश में उस प्रयास पर पानी फेर रहे हैं।

आज हिन्दी भाषा के साहित्य लेखन में अनेक भाव-भंगिमा वाले साहित्यकार अपने-अपने सरोकारों को लेकर आगे बढ़ने की कोशिश कर रहे हैं। हिन्दी साहित्य में वीरता, लोक कथा, भक्ति, रीति, श्रृंगार, तक वादों का विवाद लगभग समाप्त है। आधुनिक काल के गद्यकाल से अद्यतन अनेक 'वाद' और उनके 'विवाद' जारी हैं। उत्तर आधुनिकता के दौड़ में एक नवीन लोकतंत्र विकसित हुआ है। मार्क्सवादी साहित्य, गाँधीवादी साहित्य, समाजवादी साहित्य आदि-आदि के विवाद चल ही रहे हैं, इस बीच स्त्री लेखन, दलित लेखन, मुसलमान लेखन आदि के नये-नये तेवर दीखने लगे हैं।

बाजारतंत्र में मांग के अनुरूप उत्पादों का निर्माण होता है। उत्पादों

की गुणवत्ता विज्ञापनों के चकाचौंध में गुम हो जाती है। आधुनिक साहित्य में बढ़ते बाजारवाद के कारण लेखन की दिशा में अनेक ऐसे प्रयोग हो रहे हैं जिसमें हिन्दी भाषा और साहित्य के स्वास्थ्य पर दूरगामी असर हो सकता है। पाश्चात्य संस्कृति के देह दर्शन में, निबद्ध साहित्य हिन्दी के लिए श्रेयकर नहीं है।

इस चुनौती को हमे स्वीकार कर इसके प्रतिकार हेतु साहित्य सृजन हेतु आवश्यक उपाय ढूंढ़ना होगा।

सारांशत: साहित्य, भाषा, समाज, राजनीति, प्रशासन, देश, विदेश के साथ विविध माध्यमों एवं बाजार संस्कृति में हिन्दी, भाषा के बढ़ते कदम को देखकर हम उसकी उपलब्धियों पर इतरा तो सकते हैं परन्तु उन चुनौतियों को भी हमें सामना करना है जो उसके विकास के मार्ग में अवरोधक बनकर खड़े हैं।

"निज भाषा उन्नति अहै सब भाषा को मूल। बिन निज भाषा ज्ञान के मिटय न हिय को शूल।" ❑

कबीर का जीवन दर्शन

'कबीर' को हिन्दी साहित्य में निगुर्ण भक्ति शाखा के ज्ञानमार्गी शाखा के प्रर्वतक के रूप में स्थान दिया गया है। हिन्दी के मूर्धन्य आलोचक आचार्य शुक्ल ने मान्यता दी है कि कबीर निर्गुणवादी हैं। परन्तु उनके उपासक कथ्य निरूपाधि सर्ववादी तथा सोपाधि है-

"यद्यपि कबीर की बानी निर्गुण बानी" कहलाती है पर उपासना क्षेत्र में ब्रह्मनिर्गुण नहीं बना रह सकता। सेव्य-सेवक भाव में स्वामी में कृपा, क्षमा, औदार्य आदि गुणों का आरोप हो ही जाता है। इसलिए कबीर के बचनों में कहीं तो निरुपाधि निर्गुण ब्रह्म सता का संकेत मिलता है तो कहीं सर्ववाद, कहीं सोपाधि ईश्वर तो कहीं ब्रह्मवादी जैसे- निर्गुण ब्रह्म-

पंडित मिथ्या करहु विचारा, ना वह सृष्टि न सिरजन हारा।

थूल-अथूल पवन नहिं पावक, रवि ससि धारनि न नीरा।

और कहीं सर्ववाद की झलक मिलती है, जैसे-

"आपुहि देवा आपुहि पाती। आपुहि कुल आपुहि है जाती"

और कहीं सोपाधि ईश्वर की, जैसे-

"साईं के सब जीव हैं कीरी कुंजर दोय?"

ब्रह्म विद्या का उद्धरण दृष्टव्य है-

"तत्वमसी इनके उपदेशा। ई उपनिषद कहै संदेसा।

जागबालिक औ जनक संवादा। दत्तात्रेय बहै रस स्वादा।"

वेदान्तियों के न्याय भी कबीर जानते हैं-

"गहना एक कनक ते गहना, इन मह भाव न दूजा।

कहन सुनन को दुई करि थापिन, इस नमाज एक पूजा।।"

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास आ. रामचन्द्र शुक्ल पृष्ठ- 55

2. हिन्दी साहित्य का इतिहास आ. रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ- 55

कबीर ने अंधविश्वास से महिमा-मंडित मुल्ला और पंडितों के जाल में फँसे भारतीय जनमानस की धार्मिक विवशता देखी थी अत: वे उन्हे जाति भेद तथा धार्मिक आडम्बरों से निकालने हेतु प्रयत्न करते दिखाई देते हैं। कबीर की भावभिव्यक्ति में मानवीय अस्मिता की रक्षा सर्वप्रधान गुण है। धर्म की रूढ़ियों को देखकर ही कबीर उस पर आक्रामक होते है। मनुष्य को सबसे पहले पशुता से मुक्ति चाहिए। पाँच वक्त नमाज और प्रात: स्नान, पूजा-पाठ, सन्ध्या आरती करते हुए भी अगर मनुष्य को हम ब्रह्मण या शूद्र या सीया- सुन्नी में बाँट कर देखें तो यह कैसा धर्म है! कबीर मनुष्य को "सवेर ऊपर मानुष सच" की स्थापना को स्वीकार करने हेतु प्रेरित करते हैं-

"तहिया हम तुम एकै लोहू, एकै प्राण वियापै मोहू।

एके जनी जना संसारा, कौन ग्यान ते भयो निनारा।।"

कबीर पंडित और मुल्लाओं को समाज का पथ प्रदर्शक मानते हैं। साधारण जन से वे ऊपर माने जाते हैं। वे साधक होते हैं। वही अगर दुनिया की चाल में चलने लगे तो जन साधारण का क्या होगा। मठ, मन्दिर, मस्जिद सबको कबीर प्रतीक बनाते हुए कहना चाहते हैं कि ये मानवीय आस्था के प्रतीक हैं। इन आस्था के घरों में इनके ही प्रतिनिधि द्वारा जहाँ नीचता, कुटिलता, को आश्रय दिया जाय, उन स्थानो पर आने से कबीर मना करते हैं।

"काजी मुल्ला भ्रमिया, चल्या दुनी कै साथि।

दिल थैं दीन बिसारिया, करद लई जब हाथि।"

कबीर का विरोध 'राम नाम का मरम है आना' के रूप में है। हिन्दू गाय के पूजक हैं। मुस्लमान गाय के भक्षक हैं। जीव हत्या विवेकशील मनुष्य कभी नहीं कर सकता। प्रकृति में उपलब्ध कीरी-कुंजर सब प्राकृतिक संतुलन स्थापित करने हेतु सृजित हैं। इन्हें क्यों मारें।

1. मूल बीजक- रमैणी- पृष्ठ- 10
2. कबीर ग्रंथावली- सांच को अंग- पृष्ठ- 7

कबीरदास ने अपने को जुलाहा तो कई बार कहा है, पर मुसलमान एक बार भी नहीं कहा है, वे बराबर अपने को ना हिन्दू ना मुसलमान कहते रहे हैं। आध्यात्मिक पक्ष में निस्संदेह यह बहुत ऊँचा भाव है, पर कबीरदास ने कुछ इस ढंग से अपने को उभय विशेष बताया है कि कभी-कभी यह संदेह होता हैं कि वे आध्यात्मिक सत्य के अतिरिक्त एक सामाजिक तथ्य की ओर भी इशारा कर रहे हैं।

कबीर को पढ़ने, सुनने और गुणने के बाद ज्ञात होता है कि कबीर का काव्य मानवीय आस्मिता की रक्षा के लिए संघर्ष का काव्य है। लोक चेतना, आध्यात्मिक चेतना तथा भक्ति के साथ जाति-पाँति के भेद-भाव, धार्मिक ढोंग, आडम्बर आदि के साथ संघर्ष करते हुए उन्होंने एक नवीन मानवीय चिंतन की धारा प्रवाहित की।

कबीर का काव्यलोक एक पक्षीय नहीं है, बल्कि उनकी कविता में बहुआयामी जीवन की छवि है। कबीर को हम भिन्न-भिन्न चश्मो से देखकर जो तस्वीर बनाने की कोशिश में लगे हैं, उससे उनकी छवि धूमिल होगी। कबीर का संघर्ष एक ही समय में अनेक विषमताओं से था। कबीर चौराहे पर खड़ा होकर चर्तुदिक, संघर्ष कर रहे थे। जुलाहा के घर पालन-पोषण, कुरान, वेद, उपनिषद, सामाजिक अंधविश्वास,

राजसत्ता, ब्रह्मणवादी व्यवस्था आदि न जाने कितनी राहें और कितने चौराहें की मार कबीर को क्षेलनी पड़ी। तमाम संघर्षो को झेलते हुए उन्होंने किसी की अधीनता स्वीकार नहीं की।

मध्यकालीन राजशाही में अकेले श्रमिक के रूप में ताना-भरनी का स्वर बनकर, संसार की गति के साथ तादात्म्य स्थापित करते चले गये हैं।

कबीर के काव्य में प्रतिध्वनित महाराग युग-युग से प्रताड़ित दलितों का राग है। कर्मयोगी का राग है। उनका राग मानवीय अस्मिता का राग है। वह नाथों का राग है, सिद्धों का राग है। कबीर के काव्य में उन सभी मनुष्यों का राग प्रतिध्वनित हो रहा है जो संवेदनशील हैं।

इस महाराग के साथ ही कबीर के प्रति अल्प सहानुभूति रखने वाले आचार्य शुक्ल को भी कहना पड़ा कि- "राम रहीम की एकता समझाकर हृदय को शुद्ध और प्रेममय करने का उपदेश दिया दिया दिशाचार और उपासना विधि के कारण मनुष्य-मनुष्य में जो भेदभाव उत्पन्न हो जाता है उसे दूर करने का प्रयत्न उनकी वाणी बरावबर करती रही। यद्यपि वे पढ़े-लिखे ने थे पर उनकी प्रतिभा बड़ी प्रखर थी जिससे उनके मुँह से बड़ी- चुटीली और व्यंग- चमत्कार पूर्ण बातें निकलती थी।"[45]

कबीर को समझने के लिए समीक्षक की दृष्टि देश काल और परिस्थिति की ओर जाना स्वाभाविक है। कबीर का जीवन भी काव्य है। दोनों परिस्थितियों से प्रेरित और प्रभावित है। वह तत्कालीन जीवन का दर्पण है।

कबीर का समय राजनीतिक दृष्टि से सन्धिकाल है। 'लोदी' का शासन आरम्भ हो रहा था। एक शासक पददलित हो गया है। नाथ-सिद्ध संतों का कौल आदि मत समाज पर दुष्प्रभाव डाल रहे थे।

---

[45] ..

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास रा. चन्द्र शुक्ल पृष्ठ- 55

धर्मांधता के अन्धकार से जन सामान्य को निकालने का संघर्ष कबीर का संघर्ष है। मुल्ला के मस्जिद और अजान से तौबा पंडितों के मंदिर और मूर्तिपूजन जैसे आडम्बरों से तौबा। कबीर की भक्ति कर्म की भक्ति है। उनका सारा जीवन उस निराकार ब्रह्म को समर्पित जो सबके साईं हैं।

सुर नर मुनि-औलिया यह सब उरली तीर।
अलह-राम का गम नहीं, तहँ घर किया कबीर।[46]

सहस्त्र तार लै पूरी परी, अजहुँ विनय कठिन है दूरी।
कहहिं कबीर करम सोजोरी, सूत-कुसूत बिनै भल कोरी।

मेरा मुझ में कुछ नहीं जो कछु है सोतेरा
तेरा तुमको सौंपता, क्या लागै है मेरा

वास्तम में भक्ति का मार्ग मरम कठिन है। सहजता के साथ जीना तो और भी कठिन है। भक्ति के मार्ग में बड़े-बड़े सूरमा तक निढाल होकर गिर चुके हैं।

भगति देहुली राम की नहि कायर का काम।
सीस उतारे हाथि करि, सो लेसी हरिनाम।।

कबीर की भक्ति नासमझी की सहमति के सामने समझदार की असहमति के साथ खड़े दिखाई देते हैं। यही समझदारी शायद शुक्ल जी

---

[46] **साखी संग्रह- पृ. 125 अहरिऔध**

कबीर के विषय में यह लिखने को बाध्य करता है कि "इसमें सन्देह नहीं कि कबीर ने ठीक मौके पर जनता के उस बड़े भाग को संभाला जो नाथ पन्थियों के प्रभाव से प्रेमभाव और भक्तिरस से शून्य और शुष्क पड़ता जा रहा था। इसमें संदेह नहीं कि उनके द्वारा यह बहुत आवश्यक कार्य हुआ।"

आलोचना अप्रैल 17 पृ. 86, 1985

कबीर ने राम रसायन चख लिया था। राम रसायन का स्वाद पाकर कोई भी भक्त उस नाद को सुन सकता है जो कबीर के काव्य में व्यक्त हुआ है। जब प्रेम के रस में साधक भींगने लगता है तो फिर दीन-दुनियाँ की उसे खबर नहीं रहती। कबीर की भक्ति और साधना का अनुभव उनके साथ है-

"गगन गरजै तहाँ सदा पावस झरै

होत झनकार नित बजत तूरा।

बेद-कत्तेब की गम्म नाहीं तहाँ

कहै बब्बीर कोई रमै सूरा।।"

शबद- पृष्ठ- 104

कबीर काव्य में भक्ति के अनेक पक्ष हैं। कहीं अष्टांग योग की चर्चा है तो कहीं योग समाधि से अमृत पाने की मस्ती है। कहीं आराध्य को सर्वस्व समर्पित करने की भावना है तो कहीं मानवीय धुद्रता और अहं का त्याग का छुद्रता आग्रह।

घर जलाकर कबीर ने नयी दुनिया बसा ली थी, ऐसी दुनिया जहाँ "गगन गरजि बरसे अभी" का सुख है। वे उससे दूसरे को जोड़ने के लिए लुकाठी लेकर अपना-अपना घर जलाने का आह्वान करते निकल पड़ने वाले विद्रोही थे।

'तमसो मा ज्योर्तिगमय' का पाठ पढ़ाने वाले कबीर अर्न्तमन के अंधकारों विकारों को जलाकर साथ चलने की बात करते हैं। उन्हें न तो किसी से दोस्ती, है ने किसी से वैर।

"हम घर जारा आपना, लिया मुराड़ा हाथ।
अब घर जारौं तासु का, जो चलै हमारे साथ।।
कबिरा खड़ा बजार में सबकी मांगे खैर
ना काहू से दोस्ती ना काहू से वैर।"

कबीर दास भाषा के पहले कवि हैं जिन्होंने अद्वैत सिद्धांत की सामाजिक व्याख्या की है। वे सदा सामाजिक न्याय की लड़ाई लड़ते रहे। उन्होंने सामाजिक जीवन में भक्ति को स्थापित कर अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य किया है। इन्होंने द्वैतदर्शन को मकड़जाल से निकालकर सर्वसाधारण के बीच प्रस्तुत किया। इन्होंने वर्णाश्रम व्यवस्था से जुड़ते हुए सदा अपने श्रम के प्रति सचेत रहे। मनुष्य को सदा कर्म कर धन कमाना चाहिए, इस शिक्षा को कबीर ने अन्तिम क्षण तक निबाहने की कोशिश की। कबीर का काव्य परम्परा ध्वंसक नहीं बल्कि सहज साधनामार्ग खोजने की चेष्टा है।

पुरुषोत्तम अग्रवाल मानते हैं कि 'कबीर की आलोचना किसी धर्म विशेष तक सीमित न होकर धर्म मात्र की आलोचना है। उनकी साधना धर्म- मात्र का विकल्प खोजने की साधना है। कबीर का काव्य इसी विकल्प का काव्य है।

भीतर- बाहर, लौकिक- लोकोत्तर, वैयक्तिक- सामाजिक द्वन्द्वों में बँटी दीखने वाली, लेकिन वस्तुत: समग्र मनुष्य की संवेदना को साधने की अनेक कल्पनाएँ और भी की जा सकती है। कबीर की भक्ति ऐसी ही

एक कल्पना है।

"सदा धर्म तेहि हृदया बसई। राम कसौटी कसतहि रहई।"

कबीर के जीवन दर्शन को हम मानवीय अस्मिता का दर्शन कह सकते हैं। उन्होंने धर्म के रूप में मानव धर्म को स्वीकार किया है। वर्णाश्रम व्यवस्था से कर्म को मानवीय बनाया।

गीता में भगवान कृष्ण ने भी कर्म की शिक्षा दी है-

"कर्ममण्येमाधिकारस्ये मा फलेषु कदाचन"

कबीर को कर्म साधना कहीं से भी गीता के कर्मयोग से भिन्न नहीं है।

कबीर की योग साधना भारतीय वाङ्मय से ही सम्बद्ध है। इड़ा-पिंगला, सुषुमना, कुण्डली आदि साधकों की देन है। भक्ति में जब यह योग मिल जाता है तो ईश्वर हो जाता है।

आज हम कबीर को एक कोण से देख कर भलें ही उन्हें संत, कवि, श्रमिक, लोक नायक, भक्त, निर्गुन-सगुन से परे 'बेहद' कह कर अपनी डफली अपना राग अलापते रहें किन्तु में कबीर के मूल्यांकन का आंशिक अंग ही होंगे।

वास्तव में कबीर संसार के सभी जीवों के साथ स्नेहभाव रखने वाले कवि हैं छः सौ वर्षो के लम्बे अन्तराल के बाद भी समाज में समता का पाठ पढ़ाते हुए कबीर आज भी हमारे लिए समसामयिक हैं, प्रासंगिक हैं। ❑

हिन्दी साहित्येतिहास में उर्दू साहित्य

हिन्दी साहित्येतिहास पुनर्लेखन की आवश्यकता, समस्याएँ और समाधान विषयक अवधारणा के पीछे साहित्येतिहास की लगभग डेढ़ सौ वर्षो की इतिहास लेखन की परम्परा है। साहित्य में मानव जीवन, मानव मूल्यों, मान्यताओं आदि की धारा के शोधन से साहित्येतिहास का निर्माण होता है। मानव-जीवन देश-काल की सीमाओं को लांघती, तोड़ती सदा गतिमान रहती है। साहित्य उस गति से एकात्म होकर अजस्र जलधारा के समान निरन्तर प्रवाहित रहता है। साहित्य की धारा के शोधन से साहित्येतिहास का निर्माण होता है।

"हिन्दी में उर्दू साहित्य" शीर्षक भले ही एक विराधाभास लगे परन्तु उर्दू साहित्य को हिन्दी से पूर्णत: खारिज कर देना असम्भव नहीं तो सम्भव भी नहीं है। उर्दू भाषा और साहित्य की जन्मभूमि भारत ही है। इस भाषा की उत्पत्ति ब्रज भाषा, पंजाबी एवं खड़ी बोली से मानी जाती है। "मोहम्मद हसन आजाद साहब अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'आबे हयात' में लिखते हैं कि इतनी बात हर शख्स जानता है कि हमारी जबान ब्रज भाषा से निकली है और ब्रज भाषा खास हिन्दुस्तानी जबान है।' 'मीर देहलवी' के 'बागो बहार' के मुताबिक यह बाजारी और लश्करी भाषा है। ...'श्री टी. ग्राहम वेली' उर्दू को पंजाबी से हुआ मानते हैं। ...'जार्ज ग्रियर्सन' बोलचाल की ठेठ हिन्दुस्तानी भाषा से ही साहित्यिक उर्दू और हिन्दी की

उत्पत्ति मानते हैं।"[47]

लगभग डेढ़ सौ वर्षो के साहित्येतिहास लेखन की परम्परा से शोधोपरान्त अब एक नवीन इतिहास रचने की आवश्यकता है। जिससे एक सकारात्मक ऐतिहासिक मानदण्ड स्थापित की जा सके। पूर्ववर्त्ती इतिहासकारों ने तत्काल उपलब्ध सामग्रियों तथा वैयक्तिक मानदण्डों के आलोक में ही इतिहास लेखन का कार्य किया था। उनके इतिहास लेखन के प्रतिमान भिन्न-भिन्न थे। इतिहास के पन्नों से वंचित हजारों कविताएँ, लोकगीत, लोकगाथाएँ, गद्य साहित्य तथा उनके रचनाकार उद्धार की बाट जोहते काल-कवलित हो गये। प्राचीन प्रतिमानों के कारण हिन्दी अथवा खड़ी बोली हिन्दी की गुणवत्ता से पिछड़ गये ग्राम्य साहित्य जिसमें जनसाधारण की चित्-वृत्तियाँ थी, साहित्येतिहास में स्थान नहीं पा सकीं। इतिहास की पुनर्रचना के क्रम में हिन्दी के उर्दू साहित्य पर भी विचार करना होगा।

साहित्येतिहास में उर्दू साहित्य की खोज तथा भाव एवं अर्थ की दृष्टि से उसकी परख करने हेतु इसे तीन काल खण्डों में मुख्य रूप से विभक्त कर सकते हैं-

1. आदिकालीन उर्दू साहित्य
2. मध्यकालीन उर्दू साहित्य
3. आधुनिककालीन उर्दू साहित्य

1. आदिकालीन उर्दू साहित्य :

हिन्दी साहित्येतिहास में उर्दू साहित्य की बानगी सर्वप्रथम आदिकाल में पाते हैं। विश्वविख्यात सूफी संत 'अमीर खुसरो' को खड़ी

---

[47] **हिन्दी साहित्य का इतिहास- संकलन- उर्दू साहित्य का संक्षिप्त परिचय, पृष्ठ- 432**

बोली हिन्दी के साथ-साथ उर्दू के पहले रचनाकार की संज्ञा दी जा सकती है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है "वीर गाथा काल के समाप्त होते होते हमें जनता की बहुत कुछ असली बोल-चाल और उसके बीच कहे सुने जाने वाले पद्यों की भाषा के बहुत कुछ असली रूप का पता चलता है। पता देने वाले हैं- दिल्ली के खुसरो मियां और तिरहुत के विद्यापति।"

"जे-हाले-ए-मिस्कीं मकुन तग़ाफुल दुराए नैनाँ बनाए बतियाँ
कि-ताब-ए-हिज्रँ नदारम-ऐ-जाँ, न लेहू काहे लगाए छतियाँ
शबान-ए-हिजज्रँ दराज़ चूँ जुल्फरोज़-ए-बरोलत चूँ उम्र-कोताह
सखी पिया को जो न देखूँ तो कैसी काटूँ अँधेरी रतियाँ।"[48]

उन्हें 'हिन्दवी' पर गर्व था-

"चमन तूतिए-हिन्दुम, अर रास्तपुर्सी।
जे मन हिन्दुई पुर्स, ता नाज गोयम।।"

अर्थात् "मैं हिन्दुस्तान की तूती हूँ, अगर तुम वास्तव में मुझसे कुछ पूछना चाहते हो तो हिन्दवी में पूछो जिसमें कि मैं कुछ अद्भुत बातें बता सकूँ।"[49]

"अमीर खुसरो" ने खड़ी बोली में रचनाएँ तो की किन्तु उनमें से अधिकतर रचनाएँ अप्राप्य हैं। इन रचनाओं को भी खोज करने की आवश्यकता है। उन्होंने खुद लिखा है कि-

"जुज्वे चन्द नज्मे हिन्दवी नस्ते दोस्ती कर्राशुद।"

अर्थात् उन्होंने खड़ी बोली में जो कुछ लिखा, उसे मित्रों में बाँट

---

[48] **हिन्दी साहित्य का इतिहास आ. रा. च. शुक्ल, पृष्ठ- 30/31**

[49] **हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास- बच्चन सिंह, पृष्ठ- 66**

दिया।[50]

अमीर खुसरो के विषय में कहा जाता है कि "एक ओर वे मलिक छज्जू जलालुद्दीन, अलाउद्दीन खिलजी, तुगलक आदि के राजकवि थे तो दूसरी ओर सूफी फकीर निजामुद्दीन औलिया के पट्ट शिष्य। कहीं अलाउद्दीन की कट्टरता को अतिशयोक्तिपूर्ण प्रशंसा करते थे दूसरी ओर सूफी फलसफे के प्राकश में वीरानगी के सुल्तान पर मरसिया पढ़ते थे-

"मुल्के दिल कर दी ख़रावज़ तीरे-नाज़

बदरीं वीरान सुलतानी हनोज।"[51]

इस प्रकार हम पाते हैं कि एक ओर राज्याधीन दूसरी ओर सूफी सन्त के शिष्य के रूप में उनका जीवन अन्तरविरोध से ग्रस्त है।

आदिकाल में ही मौलाना दाउद का उल्लेख मिलता है। जिसमें खड़ी बोली/उर्दू के चिह्न मिलते हैं।

2. मध्यकालीन उर्दू साहित्य :

मध्यकालीन उर्दू साहित्य को हम दो भागों में विभक्त कर सकतें हैं-

1. पूर्व मध्यकाल (भक्तिकाल)

2. उत्तर मध्यकाल (रीतिकाल)

1. पूर्व मध्यकाल- मध्यकाल के पूर्वाध में निर्गुण मार्ग के ज्ञानाश्रयी शाखा के महान प्रवर्तक – 'संत कबीर' यूँ तो उर्दू साहित्य से बिल्कुल अलग-थलग हैं परन्तु उनकी रचनाओं में भी कहीं-कहीं उर्दू की छाप है। 'मसि कागद छुओ नहीं कलम गहयों नहीं हाथ' के माध्यम से

---

[50] **वही, पृष्ठ- 66**

[51] **वही, पृष्ठ- 66**

कबीर नें स्पष्ट किया है कि वे लिख नहीं सकते थे। उनके शिष्यों के प्रयत्न से ही उनके साखी, सबद, रमैनी संकलित हैं परन्तु एकाध साखी में उर्दू साहित्य विद्यमान है। इस आलोक में कबीर साहित्य का शोधन भी होना चाहिए-

"हमन है इश्क मस्ताना हमन को होशियारी क्या?

रहे आजाद या जग में हमन दुनियाँ से यारी क्या?"[52]

अखरावट या खड़ी बोली में कविवर जायसी का भी एक पद मुझे मिला है जिसमें उर्दू का व्यवहार हुआ है-

"कहीं सरिअत चिस्ती पीरू। उधरी असरु औ जँहगीरू।।"[53]

इसी प्रकार रसखान एवं रहीम के पदों में कहीं कहीं उर्दू दिख जाती है- "देखि गदर हित साहिबी, दिल्ली नगर मसान।

छिनहीं वादसा वंस की, ठसक छोरि रसखान।।" तथा

"ए रहीम दर-दर फिरहिं माँगि मधुकरी खाहिं।

यारों यारी छोड़िये वे रहीम अब नाहिं।।"[54]

इस प्रकार पूर्व मध्यकाल में हिन्दी साहित्य में उर्दू साहित्य का विशेष उल्लेख नहीं मिलता फिर भी साहित्येतिहास पुर्नरचना के क्रम में उर्दू साहित्य के विषय में हमें छान-बीन कर ही लेनी चाहिए।

2. उत्तर मध्यकाल :

उत्तर मध्यकाल में अनेक महत्वर्पूण कवियों की उर्दू साहित्य की रचनाएँ प्राप्त हुई हैं जिन्हें हिन्दी के उर्दू काव्य शैली के कवि के रूप में

---

[52] **हिन्दी साहित्य संवदेना का विकास- राम स्वरूप चतुर्वेदी, पृष्ठ- 39**

[53] **वही, पृष्ठ- 39**

[54] **वही, पृष्ठ- 39**

इतिहासकारों ने मान्यता दी है। हिन्दी के उर्दू कवियों में सबसे पहला नाम 'वली साहब' का आता है। उनका दिल्ली के प्रति इतना प्यार उमड़ा की उन्होनें अपना दिल ही दिल्ली को दे बैठे-

"दिल वली का ले लिया दिल्ली ने छीन,

जा कहो कोई मुहम्मदशाह सूँ।" क

मुगल शासन के कमजोर पड़नें पर धीरे-धीरे शास्त्रीय भाषाओं का प्रभाव कम होता गया और देशी भाषा धीरे-धीरे उनका स्थान ले ली। 'फाइज', आबरू, हातिम, यकरंग, फुगाँ, ताँबा आदि इस जमाने के कवि थे। ये रेख्ता/ खड़ी बोली में कविता करते थे।

"जख्मे दिल तो सिया नहीं जाता।

बिन सिये भी जिया नहीं जाता।। -फुगाँ ख

फिरते थे दश्त दिवाने किधर गये।

वे आशक़ी के हाए ज़माने किधर गये।। -आबरू ग

ये हसरत रह गयी क्या-क्या मजे में जिन्दगी करते।

अगर होता चमन अपना, गुल अपना, बागबाँ अपना।। -यकीन घ[55]

रीतिकाल में खड़ी बोली हिन्दी के शायरों में 'दर्द', 'सौदा' और 'मीर' ने उर्दू ग़जल को विशिष्ट ऊँचाई तक पहुँचाया। मीर साहब कथ्य और रूप-विन्यास के कारण विशेष रूप से प्रसिद्ध हुए। 'मीर', 'नजीर'

---

[55] **क, ख, ग, घ- उपर्युक्त उद्धरण- हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास बच्चन सिंह- पृ. 238**

और 'गालिब' सम्पूर्ण रीतिकालीन काव्य के परिचायक है। 'मीर तकी मीर' और 'मिर्जा गालिब' जहाँ दरबारी कवि थे वहीं 'नजीर अकबरावादी' स्वतंत्र रूप से काव्य सृजन करते थे। नजीर साहब अपने जमाने के अग्रगण्य कवि थे। गालिब के समय तक उर्दू कविता अपनी चरमौत्कर्ष पर थी।

मीर की फरसी में लिखी आत्मकथा का अनुवाद 'जिक्रे मीर' के नाम से हुआ है, जिसमें उस समय की सामाजिक स्थिति का भी वर्णन मिलता है। ये एक सूफी फकीर के बेटे थे। यही कारण है कि इनकी कविताओं में सूफियत का प्रभाव है। इनकी रचनाओं में पूर्ववर्ती कवि 'वली' का प्रभाव भी परिलक्षित होता है। उनकी जिन्दगी और समाज से जुड़े एक शेर इस प्रकार है-

"दरहमीं हाल की सारे मिरा दिवां मे,
सैर कर तू भी यह मजमुआं परीशानी का"

अपनी रचनाओं पर इन्हें इतना विश्वास था कि उन्होंने खुद घोषणा की है कि भविष्य में भी मेरा नाम रहेगा-

"जाने का नहीं शोर सुख़न का मिरे हरगिज, (च)
ता हश्र जहाँ में मिरा दिवान रहेगा।"

वे रेख़ते/खड़ी बोली हिन्दी को प्यारी जुबां कहते थे-

"क्या जानें लोग कहते हैं किसको सुरूरे क़ल्ब, (छ)
आया नहीं है लफ्ज़ यह हिन्दी जुबाँ के बीच"

समीक्षक इन्हें 'कबीर' की विचारधारा और 'सूर' की भाषा मिठास के करीब पाते हैं-

"दर्द ही खुद है खुद दबा है इश्क,
शेख क्या जाने तू कि क्या है इश्क"

तथा

"उसे देखूँ जिधर करूँ निगाह

वही एक सूरत हजारों जगह" (लाली मेरे लाल की- कबीर) (ज)[56]

उन्होंने प्रेम को सर्वोच्च मानते हुए धर्म, जाति, और मनुष्य मनुष्य के बीच भेद की दिवारें तोड़ दी-

"'मीर' के ओ दीन- मजहब को अब, पूछते क्या हो उन ने तो,

कश्का: खींचा, दैर में बैठा, कब का तर्क इस्लाम किया।"

इस प्रकार हम पाते हैं कि अपनें हजारों गजलों के साथ 'मीर साहब' निश्चित रूप से हिन्दी और उर्दू साहित्य में अमर रहेंगे।

मिर्जा 'सौदा' और ख्वाजा मीर 'दर्द' मीर के समकालीन कवि थे। सौदा समझौता वादी थे पर गज़लों के स्तर पर वे 'मीर' से पीछे थे।

दर्द साहब सूफी थे। वे निन्दा और स्तुति के पीछे नहीं भागते थे, उनकी भाषा भी अत्यधिक सरल थी।

एक उदउहरण द्रष्टव्य है:-

"तुहमते चन्द अपने जिम्मे धर चले,

किस लिए आये थे हम क्या कर चले।" (ट)

इनके विषय में इतिहासकार 'सहतेशाय: हुसैन' लिखते हैं- "यद्यपि यह कवि पतनोन्मुख युग के कड़वेपन और नैराश्य के प्रतीक थे परन्तु मानवजाति के गौरव और अभिमान का पता भी इनकी कविता से चलता है। सामाजिक और आर्थिक पृष्ठभूमि मिलती है, परन्तु वह सामाजिक चेतना नहीं है, जो उन्हें बेहतर रास्ता दिखा सकती। वे लोग नास्तिक नहीं

---

[56] **च से ज तक- हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास बच्चन सिंह- पृ. 240**

थे, परन्तु उनकी विचार-स्वतंत्रता उन्हें संकीर्णता और साम्प्रदायिकता के निकट भी नहीं आने देती थी।" (ठ)[57]

'इंशा नासिख' जैसे शायरों का नाम भी रीतिकाल में लिया जाता है परन्तु उनमें सामाजिक चेतना का अभाव है। जीवन की समस्याओं से उन्हें कुछ लेना-देना नहीं था।

नज़ीर अकबरावादी इस युग के एक विख्यात शायर हैं जिनकी हिन्दी मं एक संग्रह प्रकाशित हैं। उनके काव्य में जन जीवन के यथार्थ चित्रण अवश्य हैं परन्तु वे 'कुल्लियाते नज़ीर' नाम से उर्दू में छपे हुए है। उनकी रचनाएँ हिन्दू मुस्लिम जन परम्पराओं के वाहक हैं। वे हिन्दू भी हैं और मुसलमान भी। ईदुल फित्र के सम्बन्ध में उनका कथन देखें :-

"ऐसी न शब- बरात न बकरीद की खुशी,

जैसी हर दिल में है इस ईद की खुशी।" (ड)

कहा जाता है कि वे होली में स्वयं भाग लेते थे। होली का दृश्य देखें।

"होली में यही धूप लगती हैं बहुत भलियाँ" (ढ़)

उनके विषय में गोयल साहब की टिप्पणी द्रष्टव्य है- "इस शुजू और उजार संगम पर आकर नजीर ने अजान भी दी और शंख भी फूँका। तसबीह भी ली और जनेऊ भी पहना। मुहर्रम में रोये तो होली में भँड़वे भी बने। रमजान में रोजे भी रखे और सलूनों पर राखी बाँधने पर मचल पड़े। श्ब्बरात पर महताबियाँ छोड़ी तो दिवाली पर दीप सजाये। नबी, रसूल, वली, पीर, पैगम्बर के लिए जी भरके लिखा तो कृष्ण, महादेव, नरसी, भैरो और नानक पर भी श्रद्धांजलि चढ़ायी। गुलो-बुल-बुल पर कहा तो आम और कोयल को पहले याद किया।" (ण)

एक अनुपम उदाहरण दृष्टव्य है-

---

[57] **झ से ठ तक- हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास बच्चन सिंह- पृ. 240**

"हर आन बोलते हैं कबीर की जै
फिर इसके बाद अपने उस्ताद की जै
मोरो मुकुर कनहेया जमुना के तीर की जै
फिर गोल के सब अपने खुर्दो-कबीर की जै।"[58] (त)

एक और प्रसिद्ध उदाहरण दृष्टव्य है-

"हैं जिसके तन मुलायम मैदे की जैसे लोई
वह इस हवा में खासी ओढ़े फिर हैं लोई
और जिनकी मुफ़लिसी ने शर्मों हया है खोई
है उनके सिर पर सिरकी या बोरिये की खोई
क्या-क्या मची हैं यारों बरसात की बहारें।" (थ)

उनके काव्य में हिन्दू-मुस्लिम संस्कृति की गंगा-जमुनी संगम है-

"तारीफ करूँ अब मैं क्या-क्या उस मुरली अधर बजैय्या की
नित सेवा कुंज फिरैय्या की और बन-बन गऊ चरैय्या की
गोपाल, बिहारी, बनबारी, दु:ख हरना, मेह करैया की
गिरिधारी, सुन्दर, श्याम बदन और हलधरजू भैया की
रख ध्यान सुनौ, दंडौत करो, जै बोलो किशन कन्हैया की" (द)

मिर्जा़ 'गालिब' उर्दू कविता के 'सर्वोच्च शिखर है। उनका पूरा नाम "मिर्जा असद उल्ला बेग खाँ" था। ये दरबारी कवि थे। मीर की तरह इनमें ऐंठन नहीं थी वे अपनी वास्तविकता को स्वीकारते हुए कहते है-

"गालिब वजीफाख़्वार हो दो शाह को दुआ,
वो दिन गये कि कहते थे नौकर नहीं हूँ मैं।" (ध)

---

[58] **ड से त तक- हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास बच्चन सिंह- पृ. 244**

इन्होंने भी रेखता से फ़ारसी की तुलना करते हुए कहते हैं कि-

"जो यह कहें कि रेख्ता: क्यूँ के हो रश्क-ए कि हो रश्के फ़ारसी
गुफ्ता-ए ग़ालिब एक बार पढ़के उसे सुना कि यूँ।"[59] (न)

ग़ालीब की अन्दाजे-बयाँ, पेंचोखम, दुर्दिन में हँसते रहना और हजारों में अपने को अलग रखने की कला थी। उनके काव्य में प्रेमचित्र रीति-कालीन काव्य के समान ही है।

एक प्रसिद्ध शेर-

"ये न थीं हमारी क़िस्मत कि विसाल-ए-यार होता,
अगर और जीते रहते यही इन्जार होता।"
"आह को चाहिए इक उम्र असर होने तक
कौन जीता है तेरी जुल्फ के सर होने तक।" (प)

हिन्दी साहित्येतिहास में उत्तर मध्य कालीन उर्दू साहित्य की मौजूदगी को झुठलाया नहीं जा सकता, जरूरत है उर्दू में लिखे इन कविताओं के अनुवाद की।

आधुनिककालीन उर्दू साहित्य-

"आधुनिक काल आते-आते राजनीतिक लाभ के लिए कई हथकण्डे अपनाये गये 'विलियम फोर्ट कालेज' के अधिष्ठाता 'डॉ. जॉन गिलक्राइस्ट' (सन् 17 1759 से 1847) पहले व्यक्ति थे जिनके पक्षपात पूर्ण मानसिकता के कारण 'हिन्दवी' को 'उर्दू' और 'हिन्दी' दो भाषाओं में विभक्त होना पड़ा। अगर सीधे सपाट शब्दों में कहें तो विलियम फोर्ट कॉलेज 'हिन्दवी' का मकबरा बना।" हिन्दी वालों ने उर्दू को और उर्दू वालों ने हिन्दी को अपने-अपने प्रतिद्वन्द्वी मानने लगे। एक वक्तव्य दृष्टव्य

---

[59] **थ से न तक- हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास बच्चन सिंह- पृ. 247**

है-

"अंगरेजी शासन काल में फारसी के स्थान पर आसीन होने पर उर्दू हिन्दी के मार्ग में किसी अंश में कुछ बाधा डालनें वाली अवश्य सिद्ध हुई किन्तु अब वह ऐसी कदापि नहीं है और उनका जन्म हिन्दी के विरोध के लिये नहीं, हिन्दी की वृद्धि के लिये हुआ। मेरी धारणा तो यह है कि उर्दू के रूप में मुसलमान भारतीयों नें हिन्दी की और भारतवर्ष की अर्चना की। उर्दू वह वाणी पुष्प है जिसे मुसलमानों नें इस देश के हो जाने के पश्चात् भक्ति भाव से माता की अरदास करते हुए उनके चरणों में चढ़ाया। आज नहीं, जब यह राष्ट्र पूर्ण राष्ट्र हो जानें के योग्य होगा उस समय राष्ट्रभाषा के निर्माण में उर्दू और उसके द्वारा देश की जो सेवा मुसलमान भारतीयों से बन पड़ी, उसका वर्णन इतिहास में स्वर्णाकिंत अक्षरों में होगा।" (फ)[60]

मीर अमन, अफसोस हुसैनी, हैदरी, जवान, लल्लूलाल, निहाल चन्द, इकराम अली, सैय्यद मुहम्मद मुनीर, शेर अली मदारी लाल गुजराती आदि उर्दू गद्य लिखनें वालों में पहले पायदान पर हैं।

"बागों बहार, किस्सये महरो माह, लैला मजनूं 'गुलशने हिन्द', तोता कहानी गुलजारे नसीम" आदि उर्दू की किताबें सर्वप्रथम लिखी गई। इसके बाद उर्दू गद्य और पद्य की समसामयिक, राष्ट्रीयता राजनीति, सामाजिक साम्यवादी, विश्व आदि चंतन की विचारधारा चल परी कुछ पद्य साहित्य दृष्टव्य है-

"लगता नहीं है दिल मेरा उजरे दयार में,
किसकी बनी है आलम-ए-ना पाएदार में।

-- -- -- --

कितना है बद नसीब ज़फर दफ्न के लिए
दो गज जमीन भी न मिली कू-ए- यार में" -जफ़र

---

[60] **प, फ- हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास बच्चन सिंह- पृ. 247**

"सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्ताँ हमरा
हम बुलबुले हैं इसके ये गुलसितां हमारा" - इक़वाल

खूबसूरत उदास खौफज़दा
वो भी हैं बीसवीं सदी की तरह -बशीर बद्र

जो धर्म पै बीती देख चुके, इमां पै जो गुजरी देखचुके,
इस रामां रहीम की दुनियाँ में इन्सान का जीना मुश्किल है। (ब)[61]
(अर्श मल सियानी)

आधुनिक काल में हिन्दी कथा साहित्य के कथा सम्राट 'मुशी प्रेमचन्द' की पहली कहानी उर्दू कथा साहित्य की नयी शुरूआत मानी जाती है। 'हम खुरमा हम सबाब', असरारे मआबिद, एवं जलवए ईसार, उनकी श्रेष्ठ उर्दू की रचनाएँ हैं।

इक्कीसवीं सदी में अनेक उर्दू साहित्य के गद्य लेखक और कवि देवनागरी लिपि में ही कथा साहित्य एवं काव्य रचना में लगे हुए हैं।

देवनागरी लिपि में गज़ल लिखनें की परम्परा आज भी कायम है। यह गज़ल हिन्दी साहित्य में मीर और गालिब से हम तक पहुँची हैं। मैंने संक्षेप में हिन्दी में उर्दू साहित्य के विषय में लघु प्रयास किया है। अनेक कवियों एवं उनकी रचनाओं को इसमें समाहित करना संभव नहीं है। मित्रवर 'प्रो. त्रपाठी' की इन पंक्तियों के साथ मैं इस विषय को विराम दे रहा हूँ-

---

[61] **ब- अखिल भारतीय हिन्दी सम्मेलन- 2 मार्च 1930- गोरखपुर- गणेश शंकर विद्यार्थी अमृत सित.- 2003**

"हिन्द की सरज़मी मय्यसर जिसे।

खुश नशीनी का उसके बयाँ क्या करें।।

गांधी का यह वतन इतना पाक़ है।

इसकी पाकीज़गी का बयाँ क्या करें।।"

समस्याएँ-

हिन्दी साहित्येतिहास पुर्नरचना के क्रम में हिन्दी के उर्दू साहित्य के विषय में कुछ समस्याएँ उभरकर सामनें आई हैं। इस परिप्रेक्ष्य में हमें कुछ प्रतिमान स्थापित करनें होंगे-

1. क्या अमीर खुसरो को खड़ी बोली हिन्दी के साथ-साथ उर्दू साहित्य का भी प्रथम रचनाकार माना जाय?

2. हिन्दी में उर्दू साहित्य को समाहित किया जाय अथवा नहीं?

3. समाहित किये गये साहित्य की लिपियाँ क्या थी उर्दू या उसके हिन्दी अनुवाद को ही हिन्दी साहित्य में लिया गया है, जैसे मीर, नजीर अकबराबादी, मिर्जा ग़ालिब, आबरू, फूगां, यकीन आदि?

4. देवनागरी लिपि में लिखे गये उर्दू साहित्य को हिन्दी साहित्य माना जाय या उर्दू साहित्य?

5. हिन्दी के उर्दू साहित्य के लिये कौन-कौन से प्रतिमान स्थापित किये जाएँ?

समाधान-

हिन्दी साहित्येतिहास पुनर्लेखन के परिप्रेक्ष्य में यह बात बार-बार उभर कर आई है कि किसी भी साहित्य की परख तत्कालीन परिस्थिति, परिवेश आदि के आलोक में होना चाहिए। साहित्येतिहास लेखन मात्र तिथियों या घटनाओं का दस्तावेज नहीं होता बल्कि उसमें तत्कालीन सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक आदि मूल्यों को भी रेखांकित किया जाता है। इतिहासकार को निरपेक्ष होकर इतिहास लेखन

करना चाहिए। मेरी राय में हिन्दी के उर्दू साहित्य पर भी पुर्नविचार करनें की आवश्यकता है।

पुनर्लेखन के क्रम में निम्न बिन्दुओं पर विचार करना चाहिए-

1. उर्दू साहित्य को भी हिन्दी साहित्य का अंग मानकर उसे अध्ययन किया जाय।

2. भारत के कुछ प्रान्तों- 'बंगाल' और 'राजस्थान' में उर्दू साहित्य की लिपि बंगला और राजस्थानी ही है अगर उर्दू साहित्य को भी देवनागरी लिपि में लिखी जाय तो उसे हिन्दी साहित्य की मानना चाहिए।

3. प्राचीन हिन्दी साहित्य और उर्दू साहित्य में कोई भेद नहीं था। राजनीतिक स्वार्थ के कारण 'हिन्दवी' को उर्दू और हिन्दी में विभाजित करनें का कार्य जानबूझ कर किया गया। आधुनिक भारतीय परिवेश में आज 'हिन्दवी' की तरह एक राष्ट्रीय भाषा और साहित्य की आवश्यकता है। इस परिपेक्ष्य में हमें उर्दू साहित्य को देखना होगा।

4. प्राचीन एवं आधुनिक उर्दू साहित्य के ही नहीं बल्कि बंगला, गुजराती, मराठी, असमी, तमिल, तेलगू, मलयालम, कन्नड़ आदि भारतीय भाषाओं से अनुदित साहित्य को भी हिन्दी साहित्य में स्थान मिलना चाहिए।

5. प्राचीन आदि चित्रित साहित्य जिसमें भारतीय संस्कृति, सभ्यता, समाजिक तथा प्रकृति आदि चित्रित है उसे हिन्दी साहित्य में समाहित कर लेना चाहिए।

इस प्रकार हम एक निश्चित प्रतिमान स्थापित कर हिन्दी साहित्येतिहास पुनर्लेखन के क्रम में हिन्दी में आयातित उर्दू साहित्य के प्रति न्याय कर सकते हैं। ❑

व्यष्टि से समष्टि के रचनाकार
अनूप लाल मण्डल

साहित्य-साधना के शिखर पुरुष अनूप लाल मण्डल हिन्दी साहित्य के महान विभूतियों में विशिष्ट स्थान रखते हैं। बिहार के अनेक रचनाकारों के पूँजी और प्रेरणाश्रोत मण्डलजी का अवदान अविस्मरणीय है। कोशी की संवेदना को शब्द रूप देने वाले मण्डलजी ने अपनी जन्मभूमि को हमेशा 'स्वर्गादपिगरीयसी' माना। उन्हें अपने गाँव और ग्रामीण जन से सहज अनुराग था। डॉ. चन्द्र नारायण सिंह से साक्षात्कार के क्रम में उनकी स्वीकरोक्ति द्रष्टव्य है- "इस गाँव के प्रति मेरा गहरा स्नेह है। मैं इस मिट्टी को धन्य समझता हूँ क्योंकि इसमें मैंने जन्म लिया। इस मिट्टी के कण-कण में यदि अपने नश्वर शरीर की कणिका का संयोजन कर सकूँ तो मुझे आत्म संतोष ही होगा। अपने गाँव और गाँव के निवासियों के प्रति मेरे सरल मन का अनुराग है और वह अनुराग आजन्म अक्षुण्ण रहेगा।"[62]

जन्मभूमि के सहज अनुरागी (परिषद पत्रिका, पृष्ठ- 43) महान साहित्यकार की जीवन दृष्टि नैतिक मूल्यों पर आधारित है। वे व्यक्ति एवं साहित्यकार के रूप में प्रचार से हमेशा दामन बचाने का प्रयत्न किया। उनका मानना था कि यश मिलता है, लिया नहीं जाता, खरीदा नहीं

---

[62] **जन्म भूमि के सहज अनुरागी- डॉ. चन्द्र नारायण सिंह- परिषद पत्रिका, पृ. 43**

जाता। भागवत गीता के अध्येता और मर्मज्ञ अनूप लाल ने हमेशा कर्मयोग को महत्व दिया। अपने वैयक्तिक जीवन में भी वे हमेशा नैतिक मूल्यों के पक्षधर रहे। आर्थिक तंगी में रहते हुए भी नैतिकता के मूल्य से कभी समझौता नहीं किया।

भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन में भाग लेने वालों के लिए पेंशन देने की घोषणा सरकार द्वारा की गयी। ये भी स्वतंत्रता आन्दोलन में सक्रीय भूमिका निभायी थी। स्वयं सेवकों के साथ-साथ अनेक तथाकथित स्वयंसेवक भी इस हेतु आवेदन दे रहे थे। परन्तु इन्होंने आवेदन नहीं दिया। जब अनूपजी से पूछा गया कि आप पेंशन के लिए आवेदन क्यों नहीं दिया तो उनका उत्तर था-

"गुलामी की जंजीर तोड़ने में स्वल्प सहयोग कर मैंने अपना ही काम किया था। दूसरे का नहीं। मैं गुलामी के बन्धन से मुक्त हूँ। इससे बढ़कर क्या लाभ हो सकता है। मैंने पैसे के लिए कष्ट नहीं उठाया था। भारत माँ की सेवा की थी। माँ की सेवा का मूल्य लिया जाता है?"[63]

वास्तव में मण्डलजी का जीवन और साहित्य आदर्श के प्रतिमान हैं। यह आदर्श न केवल मण्डलजी वरन् तत्कालीन अनेकानेक साहित्यकारों और समाज सेवियों के लिए सबसे बड़ा सम्बल था। कालक्रम में परिस्थियाँ बदलती गयी, आदर्श के प्रतिमान भी बदलते गए परन्तु मण्डलजी का आदर्श जीवन के अन्तिम पड़ाव तक साथ रहा। हिन्दी साहित्य सरोवर को अपनी लेखनी से विविध रंग और सुगन्धों के सरोज से सजाने और सुरभित करने वाले मण्डलजी मानवीय संवेदना के अनुपम रचनाकार हैं।

उपन्यास साहित्य आधुनिक काल की गद्य विधाओं में सर्वाधिक लोकप्रिय विधा है। अपने विशिष्ट तात्त्विक गुणों के कारण इसे महाकाव्य

---

[63] **परिषद पत्रिका, पृ. 47**

की संज्ञा दी गयी है। इस विधा में जीवन की झांकी समग्रता में दिखाई देती है। व्यक्ति और समाज के अन्दर अनेक ऐसी शक्तियाँ निरन्तर गतिमान रहती है जो एक दूसरे से टकराते हुए व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन को नये-नये रूपों में ढ़ालती रहती है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि उपन्यास साहित्य परीवर्त्तनशील मानव समाज का इतिहास है। इस परिप्रेक्ष्य में अनूप लाल मण्डल जी के उपन्यासों को पढ़ते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि उनके उपन्यास एक ईमानदार और प्रतिबद्ध रचनाकार के निरन्तर संघर्षशील परन्तु प्रगतिशील मानव जीवन धारा के दस्तावेज हैं।

मण्डलजी के उपन्यास लेखन का आरम्भ सन् 1927 ई. से होता है। 'निर्वासिता' उनका प्रथम उपन्यास है जिसका प्रकाशन सन् 1929 ई. में हुआ। उनका हिन्दी में अन्तिम उपन्यास- 'उत्तर-पुरुष' का प्रकाशन 1970 ई. में हुआ। इस प्रकार पाँच दशकों तक अनवरत मण्डलजी की लेखनी चलती रही। उपन्यास साहित्य लेखन में 18 प्रकाशित एवं एक अप्रकाशित रचना के माध्यम से इन्होंने अप्रतिम योगदान दिया है।

कथ्य और शिल्प की दृष्टि से मण्डलजी के उपन्यासों को विभाजित करने पर उनके बहुआयामी रचना संसार को सहज ही परखा जा सकता है। सर्वप्रथम मैं उनके उपन्यासों का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करना चाहता हूँ। उन्होंने अनेक मौलिक उपन्यास के साथ-साथ कुछ अनुवाद भी किया है। एक अप्रकाशित एवं एक 'अंगिका' में लिखित उपन्यास है। इसे मैंने तीन वर्ग में विभाजित किया है-

(क) मौलिक उपन्यास-

1. निर्वासिता- (अन्नपूर्णा) : 1929 ई.
2. समाज की वेदी पर : 1930 ई.
3. साकी : 1931 ई.
4. ज्योतिर्मयी : 1933 ई.
5. रूप-रेखा : 1934 ई.

6. सविता : 1935 ई.
7. मीमांसा : 1937 ई.
8. वे अभागे : 1937 ई.
9. दस बीघा जमीन : 1941 ई.
10. ज्वाला : 1941 ई.
11. आवारों की दुनिया : 1945 ई.
12. दर्द की तस्वीरें : 1945 ई.
13. बुझने न पाय : 1946 ई.
14. रक्त और रंग : 1955 ई.
15. अभियान का पथ : 1955 ई.
16. केन्द्र और परिधि : 1957 ई.
17. तूफान और तिनके : 1960 ई.
18. उत्तर-पुरुष : 1970 ई.

(ख) अनुदित उपन्यास-

1. गरीबी के दिन : 1931 ई.
2. शेष पांडुलिपि : 1961 ई.

(ग) अंगिका में लिखित उपन्यास-

1. नया सूरज-नया चॉन- 1979 ई.

(घ) अप्रकाशित उपन्यास-

1. शुभा

कथानक अथवा कथ्य की दृष्टि से मैंने मण्डलजी के उपन्यासों को निम्नांकित कोटि में रखा है-

(1) सामाजिक उपन्यास-

'निर्वासिता', 'साकी', 'ज्योतिर्मयी', 'वे अभागे', 'दस बीघा

जमीन', 'ज्वाला', 'आवारों की दुनिया' एवं 'उत्तर पुरुष'

(2) यथार्थवादी उपन्यास-

'समाज की वेदी पर', 'अभियान का पथ', 'तूफान और तिनके'

(3) राष्ट्रीय आन्दोलन से सम्बद्ध उपन्यास-

'रूप रेखा', 'दर्द की तस्वीरें', 'बुझने न पाय'

(4) मनोवैज्ञानिक उपन्यास-

'साकी', 'सविता', 'मीमांसा', 'रक्त और रंग तथा' 'केन्द्र और परिधि'

मण्डलजी के उपर्युक्त उपन्यासों को पुन: शिल्प की दृष्टि से अलग-अलग भागों में विभाजित किया जा सकता है। मैं यहाँ सिर्फ कुछ मूल विन्दुओं की ओर ध्यान आकृष्ट करना चाहूँगा।

किसी भी रचनाकार की वैयक्तिक संवेदना ही उनकी रचना का मूल्य प्रदान करती है। मण्डलजी के उपन्यासों में यह संवेदना दो भागों में विभक्त है- स्वतंत्रता पूर्व एवं स्वातंत्रोत्तर।

उन्होंने अपने आरंभिक उपन्यास से लेकर अन्तिम उपन्यास तक भारतीय संस्कृति की रीढ़ नैतिकता को सर्वोच्च प्राथमिकता दी है। आधुनिक सामाज की विषमताओं, विविधताओं, समस्याओं के साथ-साथ मनुष्य की बढ़ती हुई आवश्यकताओं को भी उन्होंने अभिव्यक्ति देने का प्रयास किया है।

स्वतंत्रता पूर्व के अधिकांश उपन्यासों में उन्होंने समाज सुधारक, समाज सेवक, आत्म बलिदानियों के प्रतीक विभिन्न स्त्री एवं पुरुष पात्रों का चयन किया है। वे पात्र या तो अन्त में सेवाश्रम में सर्वस्व समर्पित कर देते हैं या फाँसी के फंदे पर झूल जाते हैं या अंगरेजों के गोली के शिकार बनते हैं। रूप-रेखा के नरेन्द्र, दर्द की तस्वरें का बलवंत, बुझने ने पाय- के

ब्रजेन्द्र, मंगल, समाज की वेदी पर का- प्रो. धीरेन्द्र के साथ-साथ मल्लिका, अभया, पंची, हसीना, यमुना (कालिंदी) आदि पात्रों में देश भक्ति का जोश अनुकरणीय है।

मण्डलजी ने अपने उपन्यासों में जमींदारों की क्रूड़ता, उनकी हवेलियों और महलों की आन्तरिक एवं वाह्य परिवेश एवं क्रियाकलापों के माध्यम से जमींदारों के चरित्रों को भी उभारने का प्रयास किया है। 'निर्वासिता' में जमींदार की विलासिता एवं क्रूड़ता है तो 'ज्योतिर्मयी' में सुशील की बड़ी भाभी की भयानक क्रूड़ता एवं धन लिप्सा में देवर के पुत्र की हत्या, 'रक्त और रंग' में पुत्र के लिए व्याकुल विधवारानी प्रभावती और 'उत्तर-पुरुष' के चौधरी वंश के दादाजी आदि जमींदारों के चरित्रों के प्रतीक हैं।

मण्डलजी ने अपने सामाजिक एवं यथार्थवादी उपन्यासों में अनेक युवक-युवती के साथ-साथ स्त्री-पुरुष को पढ़ते एवं साथ-साथ कार्य करते दिखलाते हैं। उनके बीच स्नेह, एक-दूसरे को पाने की चाहत आदि को भी दिखलाते हैं परन्तु आदर्श और नैतिकता के पास में उन्हें इस तरह बाँधे हुए हैं कि कहीं पुरुष विवाह न करने का व्रत ले लेता है, तो कहीं मृत्यु को प्राप्त हो जाता है।

यही स्थिति स्त्री पात्रों के साथ भी होता है। हसीना प्रो. धीरेन्द्र से विवाह तो करती है परन्तु धीरेन्द्र फाँसी पर चढ़ने को वाध्य हो जाता है, अभया का अन्तिम प्रेमी ब्रजेन्द्र अपने रक्त से उसका मांग सजाकर तत्क्षण मर जाता है। नरेन्द्र को न तो मीना मिलती है न लता। बलवन्त की दुर्गा का भी यही हाल है। सुशील उषा से विवाह तो कर लेता है परन्तु पारिवारिक आधात उसे उषा को छोड़ने के लिए वाध्य कर देता है। प्रभावती कुमुद के शिक्षक को आलिंगन बद्ध करके पुन: अपने माँद में घुस जाती है।

उपन्यासों के अध्ययन के क्रम में यह कमजोरी सहज ही दृष्टिगत हो जाता है। यही कारण है कि उनके अधिकांश उपन्यास कुछ संवाद तो देते हैं परन्तु दुखान्त के कारण पाठकों एवं समीक्षकों के लिए उसे पचाना असहज होने लगता है।

अन्त में यह कहा जा सकता है कि अनूप लाल मण्डल के अधिकांश उपन्यासों में अनेक अनुत्तरित संवाद हैं जो आज भी प्रासंगिक है। कोसी अंचल के सशक्त हस्ताक्षर मण्डलजी की संवदना कोसी क्षेत्र तक सीमित न रहकर सार्वकालिक एवं सार्वदेशिक है। उनके उपन्यासों की भाषा-शैली वैविध्यपूर्ण है। पत्रात्मक शैली में रचित 'दर्द की तस्वीरें' और 'समाज की वेदी पर' उनकी अन्यतम कृतियाँ है। मानव मनोविज्ञान का सुन्दर प्रस्फुटन सविता, मीमांसा, 'रक्त और रंग' के साथ-साथ 'केन्द्र और परिधि' में हुआ है। 'ज्योतिर्मयी' डायरी शैली में विर्णित उपन्यास है।

व्यष्टि से समष्टि को समर्पित महान रचनाकार अनूप लाल मण्डल की रचनाएँ आज अप्राप्य है। नयी पीढ़ी के पाठकों को उनका नाम तक ज्ञात नहीं। उनकी सम्पूर्ण कृतियाँ अगर प्रकाशित किये जाएँ तो यही उनके प्रति सच्ची श्रद्धांजलि होगी। ❑

समकालीन हिन्दी कथा साहित्य और महिला लेखन 2000 के बाद की कहानियों में स्त्री विमर्श

समकालीन हिन्दी कथा लेखन में सन् 2000 के बाद से अद्यतन महिला लेखन की स्थिति अत्यन्त उत्साह वर्द्धक है। स्त्री लेखन के बीच से गुजरते हुए आज ऐसा लगता है मानो पुरुष वर्चस्ववादी लेखन के समानान्तर स्त्री लेखन की अनुपम शृंखला बनती जा रही है। इस शृंखला में मन्नू भण्डारी, कृष्णा सोबती, शिवानी आदि लेखिकाओं की सीमित परीधि को तोड़ती लेखिकाओं की नयी पौध आज अपनी अस्मिता और संघर्ष के लिए प्रतिबद्ध होकर स्त्री विमर्श के नये-नये वातायन खोलने हेतु सक्रीय हैं। हिन्दी साहित्य कथा लेखन में इन लेखिकाओं की शृंखला को मैं सर्वप्रथम रेखांकित करना चाहता हूँ जिसकी सूची बढ़ती ही जा रही है। सर्वप्रथम निर्देशिका में अंकित लेखिकाओं को समाहित कर तत्पश्चात् अन्य लेखिकाओं एवं उनकी कहानियों को समाहित करने का मैं प्रयास करूँगा।

(1) चित्रामुदगल- की दो कहानियाँ हैं-

(क) 'भूख' : ज्ञानोदय- अंक- जुलाई- 07, पृष्ठ- 53

(ख) 'हथियार' : ज्ञानोदय- अंक- जुलाई- 07, सन्- 2012 में पुन: प्रकाशित।

(2) ममता कालिया-

(क) 'निर्मोही' : ज्ञानोदय (उपहार अंक) जनवरी- 2012, पृष्ठ- 92

(3) सूर्यबाला-

(क) 'वेणु का नया घर' : ज्ञानोदय- अंक- 62, अप्रील- 2008, पृष्ठ- 32

(ख) 'अनाम लम्हों के नाम' : ज्ञानोदय- अंक- 62, अप्रील- 2008, पृष्ठ- 39

(ग) एक स्त्री के कारनामें : पाखी- अंक- 5 फरवरी- 2012, पृष्ठ- 33

(4) नासिरा शर्मा-

(क) 'ताजमहल' : ज्ञानोदय- अंक- 52, जून- 2007, पृष्ठ- 44

(ख) 'खामोश आतिश कदा' : ज्ञानोदय- अंक- 52, जून- 2007, पृष्ठ- 55

(5) मृदुला गर्ग-

(क) 'पीटरसन एण्ड पीटरसन' : ज्ञानोदय- अंक- 54, अगस्त- 3007, पृष्ठ- 71

(ख) 'वह मैं ही थी' : ज्ञा., अंक- 54, अगस्त- 3007, पृष्ठ- 82

(ग) 'बेंच पर बूढ़े' : ज्ञा., अंक- 102, अगस्त- 2011, पृष्ठ- 22

(6) मैत्रेयी पुष्प-

(क) 'कस्तूरी कुंडल बसै' : हंस, अंक- 8, मार्च-

2001, पृष्ठ- 209

(ख) 'चिन्हार', 'ललमनिया', 'गोमा हँसती है' : कहानी संग्रह- पृष्ठ- 209 से .....।

(7) मदुला सिंहा-

(क) 'बेमेल तस्वीरें' : ज्ञा., अंक- 65, जुलाई- 2008, पृष्ठ- 41

(ख) 'खोये जीवन की खोज' : ज्ञा., अंक- 84, फरवरी- 2010

(8) प्रभा खेतान-

(क) 'भूकम्प' : हंस- अंक- 06, जनवरी- 2003, पृष्ठ- 24, कथा- रिपोतार्ज, चर्चित उपन्यास (छिन्नमस्ता, तालाबन्दी, आओ पेपे घर चलें, पीली आँधी)

(9) मधुकांकरिया-

(क) 'अन्वेषण' : हंस, अंक- 06, जनवरी- 2003, पृष्ठ- 40

(ख) 'अंतहीन मरुस्थल' : कहानी संग्रह, पृष्ठ- 40

(ग) 'बस दो चम्मच औरत' : ज्ञानोदय, अगस्त- 2009, पृष्ठ- 42

(घ) 'पोलिथिन में पृथ्वी' : ज्ञानो. अप्रैल- 2008

(ङ) 'नन्दी ग्राम के चूहे' : ज्ञानो. अंक- 71, जनवरी- 2009, पृष्ठ- 68

(10) शरद सिंह-

(क) 'एक थी रानी' : ज्ञा. अंक- 30, जनवरी- 2012, पृष्ठ- 86

(11) उषा किरण खान-

(क) 'हमके ओढ़ा दऽ चदरिया' : ज्ञानोदय, अंक- 57, जनवरी- 2007, पृष्ठ- 47

(12) प्रत्यक्षा-

(क) 'हनीमून' : ज्ञानोदय, नवम्बर- 2006, पृ. 94, अंक- 45

(ख) 'सीढ़ियों के पास वाला कमरा' : वागर्थ, अंक- 133, अगस्त- 2006, पृष्ठ- 39

(ग) 'खुशबू' : (पहली कहानी), शबनम रंग सितारे- ज्ञा., अंक- 51, मई- 2007, पृष्ठ- 52

(घ) ईमेल-शीमेल : ज्ञा., अंक- 56, अक्टूबर- 2007, पृष्ठ- 60

(ङ) 'शारुख' : शारुख! कैसे हो शारुख- ज्ञा., अंक- 71, जन. 09, पृष्ठ- 88

(13) अल्पना मिश्र-

(क) 'छावनी में बेघर' : ज्ञानो., अंक- 51, मई- 2007, पृष्ठ- 141

(14) मृणाल पाण्डे-

(क) 'कुतिया' : हंस, अंक- 08, मार्च- 2001, पृष्ठ- 82

(15) मीरा सीकरी-

(क) 'किले की विविमुक्त खंडो की परछाइयाँ' : ज्ञानो., जुलाई- 2008, पृष्ठ- 32

(ख) 'सम्बद्ध' : ज्ञानो., अंक- 84, फरवरी 2010, पृष्ठ- 46

(ग) 'दुल्हिन गवाह मंगला चार' : वागर्थ- मई- 2001, अंक- 71, पृष्ठ- 64

(16) मनीषा कुलश्रेष्ठ-

(क) 'स्वांग' : ज्ञानो., अंक- 51, मई- 2007, पृष्ठ- 18

(ख) 'कठपुतलियाँ' : कथा संग्रह

(77) महुआ माजी-

(क) 'जंगल, जमीन और सितारे'- ज्ञानो., अंक अगस्त- 2008, पृष्ठ-

(ख) 'चन्द्र बिन्दु' ज्ञानो., उपहार अंक- जनवरी- 2012

(18) मीरा श्रीवास्तव

(क) 'योगक्षेत्र'- कथादेश : अंक- 02, अप्रैल- 2006, पृष्ठ- 66

(19) मीराकांत-

(क) 'गली दुल्हन वाली'- ज्ञानो., अंक- 56, अक्टूवर- 2007, पृष्ठ- 75

(20) अर्चना पैन्यूली-

(क) 'अगर वह उसे माफ कर दे'- ज्ञानो., अंक- , जुलाई- 2008, पृष्ठ- 51

(21) अंजली काजल-

(क) 'ओ मेरेया वतना' ज्ञानो., अंक- 57, नवम्वर- 2007, पृष्ठ- 32

(22) अनीता गोपेश-

(क) 'दूसरी बरसी' ज्ञानो., अंक- 54, फरवरी- 2010,

पृष्ठ- 56

(23) अनीता भारती-

(क) 'नीला पहाड़ लाल सूरज' : पाखी, अंक- 05, फरवरी- 2012, पृष्ठ- 59

(24) इन्दुवाली-

(क) 'सूर्या' : ज्ञानो., अंक- 102, अगस्त- 2011

(ख) 'कोशिश'- करते रहिए : अंक- 84, फरवरी- 2010, 103

(25) अनीता रश्मि-

(क) 'एक है फूलो एक है चाँदो' : ज्ञान., अंक- , अगस्त 2008

(26) उर्मिला शिरीष-

(क) 'अंगारों की हँसी' : पाखी- अंक- 15, फरवरी- 12, पृष्ठ- 36

'केंचुली शहर में अकेली लड़की', रंगमंच कहानी संग्रह

(27) उषा यादव-

(क) 'हँसिनी' : वागर्थ- अंक- 71, मई- 2001, पृष्ठ- 24

(28) ओमा शर्मा-

(क) 'ग्लोबलाइजेशन' : ज्ञानो., अंक , अप्रैल- 2008, पृष्ठ-

(29) कविता-

(क) 'गिनीपीग' : ज्ञानो., अंक , जुलाई- 2008

(30) कादम्बरी मेहरा-

(क) 'तलाश' : ज्ञनो., अंक- , दिसम्बर- 2008, पृष्ठ- 83

(31) कमला चमोला-

(क) 'औरतनामा' : हंस, अंक- 02, सितम्वर- 2001, प.- 34

(32) कृष्णा अग्निहोत्री-

(क) 'मैनिक्वींस' : ज्ञानो., अंक 84, फरवरी- 2010, प.- 99

(ख) 'टीन के घेरे', पारस, दूसरी और आदि कहानी संग्रह

(ख) 'जीना-मरना' : ज्ञानो., जुलाई- 2008, पृष्ठ- 36

(33) किरण सिंह-

(क) 'माहुर' : ज्ञानो., अंक- 84, फरवरी- 2010, पृष्ठ- 67

(34) गौतम सचदेव-

(क) 'ब्रह्मा की दूसरी बेटी' : ज्ञानो., अंक- , दिसम्बर- 2008

(35) गीत चतुर्वेदी-

(क) 'सौ किलो का साँप' : ज्ञानो., अंक- 51, मई- 2007, पृष्ठ- 210

(36) जया जादवानी-

(क) 'अर्मिनिया की गुफा' : हंस, अंक- 08, मार्च- 2001, पृष्ठ- 156

(ख) 'मितान' : ज्ञानो., अंक- , दिसम्बर- 09, पृष्ठ-

(37) ज्योति चावला-

(क) 'तीस साल की लड़की' : ज्ञानो., अंक- , दिसम्बर- 09, पृष्ठ-

(38) अंचल बंसल-

(क) 'झाल वाली मछली' : पाखी- अंक- 05, फरवरी- 2012, पृष्ठ- 79

(39) दिव्या माथुर-

(क) 'बोध' : ज्ञानो., अंक- , दिसम्बर- 2008, पृष्ठ- 46

(ख) 'पंगा' : ज्ञानो., अंक- , जनवरी- 2017, पृष्ठ-

(40) दीपा अग्रवाल-

(क) 'एक अधलिखी कहानी' : ज्ञानो., अंक- , मई- 2006, पृष्ठ-

(41) दुर्वा सहाय-

(क) 'आदमखोर' : हंस- अंक- 06, जनवरी- 2003, पृष्ठ- 62

(ख) 'रफ्तार' : (कथा संग्रह)

(42) चन्द्रकिरण सौनरेक्सा-

(क) 'बर्थ डे' : ज्ञानो., अंक- , मई 2008, पृष्ठ- 53

(43) निर्मला सिंह-

(क) 'सन्दूक'-ज्ञानो., अंक- , जुलाई- 2008, पृष्ठ- 86

(44) नीलिमा सिंह-

(क) 'मंगला गौरी' : हंस, अंक- 02, सितम्बर- 2001, पृष्ठ- 62

(45) नीलाक्षी सिंह-

(क) 'जिन मुट्ठियों में सुराख था' : तद्भव- अंक- 22, जुलाई- 2010, पृष्ठ- 210

(ख) 'सुरंग का आखिरी छोड़' : बागर्थ- अंक- , जनवरी- 2000

(46) नीला प्रसाद-

(क) 'शिंकजा' : पाखी- अंक- 05, फरवरी- 2012, पृष्ठ- 55

(47) पंखुरी राय-

(क) 'बहस के बीच अकेला पन' : ज्ञानो., जुलाई- 2008, अंक- 65, पृष्ठ- 82

(48) पूनम सिंह-

(क) 'बागबाँ आया गुलिस्ताँ' : पाखी, अंक- 05, फरवरी- 2012, पृष्ठ- 48

(49) प्रेमलता वर्मा-

(क) 'बतौर नमूने' : नया ज्ञज्ञनो., अंक- 70, दिसम्बर- 2008, पृष्ठ- 60

(50) पंखुरी सिन्हा-

(क) 'किस्सा ए कोहनूर' : कथादेश, अंक- 02, अप्रैल- 2006, पृष्ठ- 40

(ख) 'सवालों के घेरे में' : नया ज्ञानोदय, अंक- , मई- 2007, पृष्ठ- 174

(51) दीपक शर्मा-

(क) 'नौ तेरह बाइस' : नया ज्ञानोदय- 57, नवम्वर- 2007, पृष्ठ- 75

(ख) 'चमड़े का अहाता' : नया ज्ञानोदय, अंक- 57

(ग) 'हाथ की सच्ची' : नया ज्ञानोदय, अंक- 84, फरवरी- 2010, पृष्ठ- 42

(घ) 'नून-तेल' : नया ज्ञानोदय, अगस्त 2011, पृष्ठ- 34

(ङ) 'बाबूजी की जमीन' : नया ज्ञानोदय, उपहार अंक, जनवरी- 2012, पृष्ठ- 48

(52) रमणिका गुप्ता-

(क) 'गुड़िया' : नया ज्ञानोदय, अंक- 65, जुलाई- 2008, पृष्ठ- 86

(53) रजनी गुप्ता-

(क) 'फिर वहीं से शुरू' : नया ज्ञानोदय, अंक- 65, जुलाई 2008, पृष्ठ- 45

(ख) 'मध्यान्तर' : नया ज्ञानोदय, अंक , अगस्त- 2009, पृष्ठ- 124

(ग) 'उसके हिस्से का सच' : पाखी, अंक- 05, फरवरी- 2012, पृष्ठ- 53

(54) रंजना जायसवाल-

(क) 'दूसरा थप्पड़' : पाखी, अंक- 05, फरवरी- 2012, पृष्ठ- 74

(55) राजुला साह-

(क) 'एक फटकार दूर एक चपत पास : नया ज्ञानोदय,

अंक- 51, मई- 07, पृष्ठ- 200

(56) रानू मुखर्जी-

(क) 'नयी सुबह : नया ज्ञानोदय, मार्च- 2005, पृष्ठ-

(57) वन्दना राग-

(क) 'रात्रि जागरण' : वागर्थ, अंक- 133, अगस्त 2006, पृष्ठ- 42

(ख) 'टोली' : नया ज्ञानोदय, अंक- 65, जुलाई 2008, पृष्ठ- 76

(ग) 'आज का रंग' : नया ज्ञानोदय, अंक- , मई- 2011, पृष्ठ- 50

(घ) 'शहादत और आक्रमण' : नया ज्ञानोदय, अंक- , मई- 2011, पष्ठ- 118

(58) विभा रानी-

(क) 'अभिमन्यू की भ्रूण हत्या' : वागर्थ, अंक- 71, मई- 2001, पृष्ठ- 13

(59) शीताक्षी सिंह-

(क) 'बिंबघात' : हंस, अंक- 02, सितम्बर- 2001, पृष्ठ- 52

(60) शिल्पी-

(क) 'जहाज देखा क्या : नया ज्ञानोदय, अंक- 51, मई- 2007, पृष्ठ- 160

(61) शीला रोहेलकर-

(क) 'हॉका' : कथादेश, अंक- 05, जुलाई 2008, पृष्ठ- 32

(62) सोनाली सिंह-

(क) 'सपने' : अंक- 133, अगस्त- 2003, पृष्ठ- 78

(ख) 'दसशंख और ग्याहर सीपियाँ' : नया ज्ञानोदय, अंक- 51, मई- 2007, पृष्ठ- 82

(63) सुषमा जगमोहन-

(क) 'मैं तेरा आशिक' : नया ज्ञानोदय, अंक- 53, जुलाई 2007, पृष्ठ- 74

(64) शर्मिला बोहरा जालान-

(क) 'कार्नसूप' : नया ज्ञानोदय, अंक- 51, मई- 2007, पृष्ठ- 196

(65) डॉ. सुशीला टोकभरे-

(क) 'आतंक के साये में' : कथादेश, अंक- 05, जुलाई 2008, पृष्ठ- 66

(66) संगीता गुन्देचा-

(क) 'मल्लहा'र : नया ज्ञानोदय, मार्च- 2005, अंक- 25, पृष्ठ- 116

(ख) 'लकड़ी का वक्सा' : नया ज्ञानोदय, अंक- 39, मई 2006, पृष्ठ- 43

(67)संजना कौल-

(क) 'आधी नदी का सूरज' : कथादेश, अंक- 06, अगस्त- 2003, पृष्ठ- 56-61

(ख) 'काठ की मछलियाँ' : (कहानी संग्रह)

(68) संतोष श्रीवास्तव-

(क) 'मेरे होने का अर्थ' : नया ज्ञानोदय, अंक- 84, फरवरी- 2010, पृष्ठ- 62

(69) स्वाति तिवारी-

(क) 'उत्तराधिकारी' : नया ज्ञानोदय, अंक- 84, फरवरी- 2010, पृष्ठ- 113

(70) अर्चना वर्मा-

(क) 'नेपथ्य' : हंस, अंक- 08, मार्च- 2001, पृष्ठ- 60

(ख) 'राजपाट' तथा अन्य कहानियाँ स्थगित कहानी संग्रह।

(71) उर्मिला पवार-

(क) 'कवच' : हंस, अंक- 08, मार्च- 2001, पृष्ठ- 163

(ख) 'ए चाइल्डहुड टेल' लघु कहानी

❑

प्रेमचन्द के उपन्यासों में कृषक जीवन का यथार्थ

प्रेमचन्द की रचनाओं का मूल स्वर यथार्थ है। जहाँ वे आदर्श की बात करते भी हैं तो उसे वह यथार्थ के ठोस भूमि पर ही प्रतिष्ठित करते हैं, कोई 'यूटोपिया' नहीं खड़ा करते। जहाँ उनके समाधान बिल्कुल निराधार और परिकल्पित दीखते हैं वहाँ भी हमें यथार्थ के स्वरूप परिवर्त्तन की चेष्टा नजर आती है, भले ही वह चेष्टा युगीन-सीमाओं का अतिक्रमण नहीं कर पाती। लेकिन जैसे-जैसे प्रेमचन्द भारतीय यथार्थ की गहराई में उतरते हैं वैसे-वैसे वह उन सीमाओं को तोड़ते भी जाते हैं। वे कभी भी यथार्थ के नग्न चित्रण के पक्षधर नहीं रहे। उन्हें आरम्भ से ही यह एहसास था कि भारतीय-जनजीवन पर छाये गहरे संकट को दूर करने के लिए उपन्यास को एक हथियार के रूप में प्रयोग किया जा सकता है। इसके लिए जरूरी था कि प्रेमचन्द अपने समय के यथार्थ से पूरी तरह सम्बद्ध होते और उन्हें अपने उपन्यास की केन्द्रीय धूरी प्रदान करते। प्रेमचन्द ने ऐसा ही किया। उन्होंने हिन्दी कथा साहित्य के रथ को 'ऐय्यारी' जादुइ, तिलस्मी, समग्रता सामन्ती कीचर से निकाल कर यथार्थ के नये पथ पर आरूढ़ किया। हिन्दी कथा साहित्य को प्रेमचन्द की यह महान देन है।

हिन्दी में प्रेमचन्द का पहला उपन्यास 'सेवादसन' सन् 1918 में प्रकाशित हुई। इस उपन्यास के प्रकाशन ने हिन्दी कथा परम्परा में एक नये युग का सूत्रपात किया। यह यथार्थवाद का युग था। इसके बाद प्रेमचन्द लगातार उपन्यासों की रचना करते रहे। हर नये उपन्यास में

उनकी यथार्थवादी चेतना पहले से ज्यादा पुष्ट नजर आती है।

मैं पस्तुत आलेख में कथा सम्राट प्रेमचन्द द्वारा कृषक जीवन के यथार्थवादी दृष्टिकोण के विविध पक्षों का सार-संक्षेप प्रस्तुत करने का प्रयास कर रहा हूँ।

प्रेमचन्द भारत की वास्तविक शक्ति को अच्छी तरह से पहचानते थे। भारत के नये विकास के शक्ति स्रोत के रूप में किसानों के महत्व को उन्होंने अपनी रचनाओं के मूल में प्रतिष्ठित किया। भारत किसानों का देश है, यह हमेशा से कहा जाता रहा है, लेकिन भारत के नये यथार्थ के निर्माण में उनकी असली ताकत का चित्रण हिन्दी कथा साहित्य के इतिहास में ही नहीं, पूरे भारतीय साहित्य के परिप्रेक्ष्य में सर्वप्रथम प्रेमचन्द ने किया। आज भी अनेक कथा आन्दोलनो के विकास के बाद हिन्दी कथा साहित्य प्रेमचन्द की उँचाई को छू नहीं सका है। यहाँ तक कि अपने समय के सबसे समर्थ साहित्यकारों- 'माइकेल मधुसूदन दत्त', 'बंकिम चन्द', 'रवीन्द नाथ ठाकुर', 'शरत् चन्द्र' आदि भी भारतीय किसानों की शक्ति का वैसा चित्रण नहीं कर पाये, जैसा प्रेमचन्द करते हैं।

प्रेमचन्द के लिए राष्ट्रीय मुक्ति संग्राम का प्रश्न सर्वोपरि था। लेकिन उनके अनुसार यह संग्राम तभी महत्व अर्जित कर सकता है जब उसका रिश्ता भारत की करोड़ों शोषित किसान जनता के दुख और उसकी संघर्ष चेतना से हो। प्रेमचन्द के लिए भारत की आजादी का बहुत महत्व था लेकिन वह यह मानते ये कि हमारी आजादी भारतीय किसानों को हर प्रकार की दासता से आजादी के साथ जुड़ी है। तत्कालीन भारतीय समाज में किसानों की आर्थिक स्थिति पहले से ज्यादा बद्दतर हो गयी थी। पहले तो उसे एक देशी मालिक के तलुए सहलाने पड़ते थे, अब अंग्रेज हुक्मरानों ने उसे गुलामी का नया तौक पहनाया था। उसे लूटने वाले सिर्फ जमींदार और अंग्रेज हाकिम ही न थे बल्कि इस लूट के माल को

हड़पने वालों की एक लम्बी पल्टन थी। कारिन्दे, पण्डे-पुरोहित, पुलिस, सरकारी कर्मचारी, गुण्डे और बाबू- सभी इस लूट में शामिल थे। उस समय भारत के किसानों का भयंकर रूप से चौतरफा शोषण हो रहा था। लेकिन 'कोई हों नृप हमें का हानि' जैसे विचार रखने वाली किसान जनता अपने मालिकों की इस लूट-खसोट वाली तस्वीर को पहचान रही थी। इसीलिए ऐतिहासिक परिस्थितियों ने उसे भारत के पहले स्वतंत्रता संग्राम सन् 1857 के विद्रोह में सक्रिय रूप से संघर्ष करने के लिए प्रेरित किया।

प्रेमचन्द युगीन समाज के प्रमुख वर्ग सामन्त, महाजन और किसान थे। समाज के मूल-भूत कार्य इन्हीं के द्वारा सम्पन्न होते थे। निम्न मध्यवर्ग तथा मध्यवर्ग का तो प्रादुर्भाव हो चुका था किन्तु उनका विस्तार या भूमिका स्पष्ट न हो सकी थी। वैसे तो प्रेमचन्द के उपन्यासों में सभी वर्गो और समुदायों के प्रतिनिधि चरित्र मिलते हैं लेकिन प्रेमचन्द के प्रमुख पात्र किसान हीं हैं। भैरव प्रसाद गुप्त के शब्दों में- "एक महान दृष्टिवान साहित्यकार की हैसित से प्रेमचन्द ने यह समझ लिया था कि साहित्य में उसी वर्ग पर विशेष ध्यान देना चाहिए जिस पर समाज का आधारभूत जीवन अवलम्बित है।"[64]

यह आधारभूत वर्ग उस समय के भारतीय समाज में निश्चित रूप से किसानों का ही था। इसीलिए प्रेमचन्द जैसे युग द्रष्टा साहित्यकार के लिए यह असम्भव था कि वह उस समय की मूल सामाजिक शक्ति से असंपृक्त रहते। प्रेमचन्द किसानों की मूल शक्ति से न केवल जुड़े बल्कि उन्होंने किसानों के दुख-दर्दो, उल्लास और संघर्ष को अपना दुख-दर्द, उल्लास और संघर्ष माना। इसीलिए वह तत्कालीन समय के किसानों की वास्तविकता का ऐसा यथार्थपरक अंकन प्रस्तुत कर सके। इस

---

[64] **कलम- भैरव प्रसाद गुप्त- पृ. 32**

यथार्थपरक अंकन में इतनी सच्चाई और आत्मीयता है कि पाठक बरबस भारतीय किसानों की आशा आकांक्षाओं के साथ सम्बद्ध हो जाता है। उनके चित्रण में इतनी ऐतिहासिकता और यथार्थता है कि उस समय की तस्वीर का सही रूप हमें देखते पता चलता है। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने ठीक हीं लिखा है- "आप बेखटके प्रेमचन्द का हाथ पकड़ कर मेड़ों पर गाते हुए किसान को, अंत:पुर में मानविये प्रियतमा को कोठे पर बैठी हुई वार वनिता को, रोटियों के लिये ललकारते भिखमंगों को, कूट परामर्श में लीन गोयन्दों को, ईर्ष्यापराण प्रोफेसरों को, दुर्बल हृदय बेकारों को, साहस परायण चमरिन को, ढोंगी पंडितो को, फरेबी पटबारी को, नीचाश्य अमीरों को देख सकते हैं और निश्चित होकर विश्वास कर सकते हैं कि जी कुछ आपने देखा वह गलत नहीं है।"[65]

प्रेमचन्द के तीन प्रमुख उपन्यास- 'प्रेमाश्रम', 'कर्मभूमि', और 'गोदान' कृषक जीवन की समस्याओं से सीधे सम्बन्धित हैं। ऐसा नहीं है कि इन तीनों के अतिरिक्त प्रेमचन्द ने अपने अन्य उपन्यासों में किसानों के संघर्ष के चित्र नहीं प्रस्तुत किये हैं, लेकिन वस्तुत: 'प्रेमाश्रम' और 'कर्मभूमि' के साथ-साथ 'गोदान' हिन्दुस्तानी किसानों के जीवन की वृहतत्रयी समाप्त करता है।"[66] इसीलिए यहाँ हम अपने अध्ययन विश्लेषण का आधार इन तीन प्रमुख उपन्यासों को ही बनाएँगें।

यद्यपि प्रेमचन्द ने हिन्दी में अपने पहले उपन्यास 'सेवासदन' में ही किसानों के स्थिति का चित्रण किया है फिर भी प्रत्यक्ष नहीं किया है। एक प्रकार से प्रेमचन्द ने सेवासदन से ही 'प्रेमाश्रम' की सूचना दे दी थी। उनकी पैनी यथार्थवादी दृष्टि उन किसानों पर पड़ चुकी थी जो शोषण और अत्याचार का विरोध करने के लिए कमर कस रहे थे। सेवासदन में

---

[65] **हिन्दी साहित्य- आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी- पृष्ठ- 465**

[66] **प्रेमचन्द और उनका युग- डॉ. राम विलास शर्मा- 101**

यह संकेत मिलता है कि समाज के बहुत से अनाचार किसान और जमींदार के सम्बन्धों के असन्तुलन के कारण है। किसान को जमींदार चूसना चाहता है और जमींदार को पुलिस मदद पहुँचाती है। इस उपन्यास में महन्त, जमींदार के अत्याचार के फलस्वरूप 'चैतू' किसान की मृत्यु हो जाती है। यह दृष्टि 'प्रेमाश्रम' में आकर और विस्तृत होती है।

'प्रेमाश्रम' प्रथम विश्वयुद्ध के बाद के दौर का उपन्यास है। सन् 1920 और 30 के आन्दोलनों में किसानों के संघर्ष को सीमित करने की बराबर कोशिश की गयी थी। जबकि प्रेमचन्द के लिए राष्ट्रीय मुक्तिसंग्राम तभी सफल हो सकता था जब वह करोड़ों किसानों की अपनी मांगों का संग्राम वन जाय। भारत की सामन्ती शक्तियाँ विदेशी प्रभुत्व का आधार थी। इसीलिए प्रेमचन्द के लिए आजादी का मतलव था इस आधार को खत्म करना। जमींदार वस्तुत: अंग्रेजों के दलाल हैं, प्रेमचन्द ने इस बात को बहुत स्पष्ट शब्दों में राय कमलानन से कहलाया है- यह जागीरदार नहीं है, इसे रियासत कहना भूल है, यह निरी दलाली है। इस भूमि पर मेरा क्या अधिकार है। मैंने इसे बाहुबल से नहीं लिया। नवाबों के जमानें में किसी सूबेदार ने इलाके की आमदनी वसूल करने के लिए मेरे दादा को नियुक्त किया था। मेरे पिता पर भी नवाबों की बड़ी कृपादृष्टि रही। इसके बाद अंग्रेजों का जमाना आया और यह अधिकार पिताजी के हाथ से निकल गया। लेकिन राजद्रोह के समय पिताजी ने तनमन से अंग्रेजों की सहायता की। शक्ति स्थापित होने पर हमें वहीं पुराना अधिकार फिर मिल गया। यही इस रियासत की हकीकत है।[67]

वस्तुत: अंग्रेजी साम्राज्यवाद और जागीरदारों, जमींदारों के आपसी सम्बन्ध और उसके जरिये विशाल कृषक समुदाय का निर्मम शोषण की समझदारी का सहज परिणाम है- 'प्रेमाश्रम'। प्रेमचन्द ने

---

[67] **प्रेमाश्रम- पृ. 117 - प्रेमाश्रम- प्रेमचन्द- पृ. 117**

पहलीबार हल जोतने वाले, बेगार करनेवाले और एक साथ प्राकृतिक प्रकोप और शोषकों का मुकाबला करनेवाले किसानों को नायक बनाया। हिन्दी में इस तरह का उपन्यास पहले किसी ने नहीं लिखा था। डॉ. राम विलास शर्मा के शब्दों में- "हिन्दी में किसानों की समस्याओं पर ज्यादा उपन्यास लिखे ही नहीं गये, जो लिखे भी गये है, उनमें प्रेमचन्द की सूझ-बूझ का अभाव है। इसलिए आज का 'प्रेमाश्रम' हिन्दी में अपने विषय का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है।"[68]

प्रेमचन्द हमें ठेठ किसानों के बीच ले जाते हैं। उनके खेत और ताल, उनके अखाड़े और उनकी लावनी, उनके अंध-विश्वास और नये जीवन के कसमसाते अंकुर, प्रेमाश्रम में ये सब कुछ सजीव है। प्रेमचन्द किसानों की प्राचीन परम्परा दिखाते हैं तो यह भी कि कहाँ उस परम्परा की कड़ियाँ टूट रहीं हैं। प्रेमचन्द के यथार्थवादी दृष्टिकोण की खूबी इस बात में है कि वह समाज में देख सकते हैं कि कौन सी चीज मर रही है और कौन सी चीज पनप रही है। यहाँ कुछ समाजिक शक्तियाँ उदयशील है तो कुछ शक्तियाँ पतनशील भी। प्रेमाश्रम के लखनपुर गाँव के किसान उगनेवाली शक्ति के प्रतीक हैं। वे निरस्त्र हैं, संघर्ष में मार खा जाते हैं, भयानक यातनाएँ सहते हैं, अंध विश्वासों और कुसंस्कारों से पूरी तरह पीछा नहीं छुड़ा पाते लेकिन भविष्य उन्हीं का है। प्रेमाश्रम के ज्ञानशंकर, गौशखाँ, ज्वाला सिंह आदि भले ही शक्तिशली दिखाई दें लेकिन उनका भविष्य अनधकारमय है। वे समाज की प्रगति को रोकनेवाली मरणशील शक्ति है। "प्रेमाश्रम किसान जीवन का महाकाव्य है। इसमें उस जीवन का एक पहलू नहीं दिखाया गया, वह एक विशाल नदीं की तरह है, जिसमें मूल धारा के साथ आस-पास के नालों का पानी, जड़ से उखड़े हुए पुराने खोखले पेड़, और खेतों का घास-पात भी बहता हुआ दिखाई

---

[68] **प्रेमचन्द और उनका युग- डॉ. राम विलास शर्मा, पृ. 47**

देता है।"[69]

प्रेमाश्रम की रचना के बाद प्रेमचन्द कर्मभूमि में किसानों की समस्या को नये सिरे से उठाते हैं। उनके उपन्यास 'रंगभूमि' में भी ग्राम जीवन के कई यथार्थपरक चित्र मिलते हैं। 'रंगभूमि' के ग्राम- चित्रण का महत्ता इसलिए भी है कि छिन्न-भिन्न होते हुए गाँव और उनके स्थान पर आबाद होते हुए नगरों का चित्रण इसमें मिलता है। 'सूरदास' वस्तुत: विश्रृंखलित भारतीय कृषक समाज का असहाय, विपन्न, व्यक्ति है। 'रंगभूमि' के बाद 'कायाकल्प' और 'गबन' में से विशेष रूप से कायाकल्प में किसानों की स्थिति का चित्रण मिलता है। लेकिन कर्मभूमि में आकर प्रेमचन्द किसानों के यथार्थ का नये सिरे से साक्षात्कार करते हैं।

'कर्मभूमि' में प्रेमचन्द सबसे ज्यादा जोर भूमि की समस्या, लगान कम करने की समस्या, खेतिहर मजदूरों और गरीब किसानों के लिए जमीन की समस्या पर देते हैं। प्रेमचन्द का यह उपन्यास राष्ट्रीय मुक्ति संग्राम के उस दौड़ का है जब किसान अंग्रेजों और जमींदारों का मनमाना अत्याचार सहने के लिए तैयार ने थे। वे अन्याय और अत्याचार का प्रतिकार करने लगे थे। इसके लिए वे जो साधन मिले, उनका उपभेग करने के लिए तैयार थे। सन् 1929-30 में मन्दी के युग के संकट का भार सबसे अधिक गाँव के विपन्न किसानों पर पड़ा। प्रेमचन्द ने संकट से किसानों की बढ़ती हुई मुसीबतों का जो यथार्थ वर्णन इस उपन्यास में किया है वह देखने योग्य है- "इस साल अनायास ही जिन्सों का भाव गिर गया। इतना गिर गया, जितना चालीस साल पहले था। जब भाव तेज था, किसान अपनी उपज बेच-बाच कर लगान देता था लेकिन जब दो और तीन के जिन्स एक में बिके तो किसान क्या करे, कहाँ से लगान दे,

---

[69] **प्रेमचन्द और उनका युग- डॉ. रामविलास शर्मा, पृ- 48**

कहाँ से दस्तूरियाँ दे, कहाँ से कर्ज चुकाये, विकट समस्या आ खड़ी हुई और यह दशा कुछ इस इलाके कि न थी सारे प्रान्त, सारे देश यहाँ तक कि सारे संसार में यही मन्दी थी। चार सेर का गुड़ कोई दस सेर में भी नहीं पूछता, आठ सेर का गेहूं ठेढ़ रूपये मन में भी मंहगा है--- "किसानों ने एक-एक दाना बेच डाला भूसे के एक तिनका भी न रखा लेकिन ये सब कुछ करने पर भी चौथाई लगान से ज्यादा न अदा कर सके और ठाकुर द्वारे में वही उत्सव थे वही जल बिहार थे।"[70]

लेकिन इस मन्दी में भी किसान संघर्ष करते हैं। कुछ गॉवों में किसानों ने दस्तूरी देना बन्द कर दिया। आत्मानन्द के सभापतित्व में गंगा के किनारे सभा हुई। लेकिन यही प्रेमचन्द किसानों के सही नेतृत्व के प्रश्न को खड़ा करते हैं। अमरकान्त किसानों की वास्तविक नेतृत्व नहीं कर पाता। एक तरह से महन्थ जी के चासनी भरे शब्दों की लपेट में आ जाता है। कर्मभूमि में प्रेमचन्द ने किसानों की संघर्ष चेतना की प्रखरता को रेखांकित किया है। किसान जीवन से सम्बद्ध सभी पात्र संघर्ष की ज्वाला में धधक रहे हैं। 'मुन्नी' और 'सलोनी' किसानों की शक्ति के आधार पर प्रेमचन्द की ऐसी चरित्र सृष्टियाँ हैं जिन्हें पाठक कभी भुला नहीं पाता।

कर्मभूमि के बाद 'गोदान कृषक जीवन का श्रेष्ठतम शब्द चित्र है। किसानों के जीवन के अलग-अलग पहलुओं पर वह उपन्यास लिख चुके थे- प्रेमाश्रम में बदखली, इजाफा, लगान पर, कर्मभूमि में बढ़ते हुए आर्थिक संकट और किसानों की लगान बन्दी के लड़ाई पर- लेकिन ऋण की समस्या पर उन्होंने कोई विस्तार से उपन्यास नहीं लिखा था। उन्होंने प्रेमाश्रम, कर्मभूमि में किसानों और जमींदारों के भेद को बहुत साफ-साफ जाहिर किया था। गोदान में यह भेद पहले से भी ज्यादा कौशल से प्रकट किया गया है।

---

[70] **कर्मभूमि- प्रेमचन्द- पृ. 65-66**

गोदान में आकर प्रेमचन्द ने बहुत से किसान पात्रों को उभार कर रखने के बदले होरी पर ध्यान केन्द्रित किया है। 'होरी' उन तमाम भारतीय किसानों की विशेषताएँ लिए हुए है जो जमींदारों और महाजनों की धीमे-धीमे लेकिन बिना रूके हुए चलनेवाले चक्की में पिसा करते हैं। यहाँ होरी अकेला है। प्रेमाश्रम के किसान चट्टान की तरह प्लेग और आगजनी, दमन का मुकाबला करते हैं। वस्तुत: गोदान में किसानों के शोषण का रूप ही दूसरा है। यहाँ होरी अकेला है तो इसकी जिम्मेदारी ऐतिहासिक परिस्थितियों पर है। यहाँ सीधे-सीधे राय साहब के करीन्दे होरी का घर लूटने नहीं पहुँचते लेकिन उसका घर लुट जरूर जाता है। 'होरी' के विरोधी बड़े सतर्क हैं वे ऐसा कुछ नहीं करते जिससे होरी दस-पाँच को इकट्ठा करके उसका मुकाबला करने को तैयार हो जाय। राय साहब उन हिंसक पशुओं में हैं जो गरजने और गुर्राने के बदले मीठी बोली बोलना सीख गये हैं। 'होरी' अपनी जान से हाथ धोता है लेकिन मीठी बोली सुनता हुआ, उस जंगली पशु से लड़ता हुआ नहीं। होरी के चरित्र की यह कमजोरी है जिससे राय साहब फायदा उठाते हैं। वह गाँव के किसान में फूट डालने में सफल हुए हैं। लेकिन होरी का पुत्र गोबर संघर्षरत नये किसानों का प्रतीक है। राय साहब के विरोध में गोबर के तीक्ष्ण व्यंग्य से 'होरी' झुंझला उठता है। वो जायदाद के मोह, किसान की मर्यादा और भगवान की दुहाई देता है। होरी राय साहब का पक्ष लेता है और यह तर्क देता है कि 'वे भगवान के सहारे ही धर्म-कर्म सम्पन्न करते हैं' लेकिन गोबर कहता है- "नहीं, किसानों के बल पर और मजदूरो के बलपर। यह पाप का धन पचे कैसे, इसीलिए दान-धर्म करना पड़ता है। एक दिन खेत में ऊख गोरना पड़े तो सारी भक्ति भूल जाय।"[71]

होरी और गोबर की यह बातचीत एक पिछड़े हुए किसान और

---

[71] **गोदान- प्रेमचन्द- पृ. 20**

अपने अधिकारी को पहचानने वाले आगे बढ़े हुए एक नये किसान की चेतना की टक्कर है। यह टक्कर दिखाकर प्रेमचन्द यह दिखाना चाहते हैं कि राय साहब की मीठी बोली का असर सभी किसानों पर एक सा नहीं पड़ता। किसानों की नयी पीढ़ी उनकी हकीकत पहचानने लगी है।

होरी प्रेमाश्रम के मनोहर और बलराज की तरह एक सचेत किसान नहीं है। अपनी खेती और परिवार की देख-भाल ने उसे काफी स्वार्थी बना दिया है। उसमें वे तमाम अंध-विश्वास पाये जाते हैं जो अपने पुरखों से उसे विरासत में मिले हैं। समय-समय पर समझौता करने को वह बुड़ा नहीं मानता। धनिया उससे ज्यादा समझदार है। जबकि होरी जायदाद को ही जीवन का आधार मानता है। फिर उसकी सारी यायदाद छीन ली जाती है और वह कंकड़ खोदते हुए जान देता है। वस्तुत: होरी उन किसानों का प्रतिनिधि है जिनकी जमीन उनके हाथ से निकलती जाती है और वे मजदूरी करने के लिए मजबूर किये जाते हैं। ये मजदूरी आममी को चूस लेती है। वही होरी जिसने पठान बने मेहता को पटक दिया था। लू खाकर मैदान में गिर पड़ता है।

होरी की इच्छाएँ साधारण भारतीय किसानों को इच्छाओं की तरह साधारण है। एक गाय लेकर खेती बारी करता हुआ जीना चाहता है। तीन-बीधा जमीन के लिये वह जान लड़ा देता है, कन्या बेचने के लिये तैयार हो जाता है। यहीं प्रेमचन्द टिप्पणी करते हैं- "आज तीस साल तक जीवन से लड़ते रहने के बाद वह परास्त हुआ और ऐसा परास्त हुआ है मानो उसे नगर द्वार पर खड़ा कर दिया गया है और जो आता है उसके मुँह पर थूक देता है।"[72]

लेकिन होरी संघर्ष में पराजित नहीं हुआ। वह कंकड़ खोदने का काम शुरू करता है जब वह मानो एक नया जीवन शुरू कर रहा हो। जिस

---

[72] **गोदान- प्रेमचन्द- पृ. 366**

दिन वह लू लगने से मड़ने को होता है, उसकी मानसिक दशा होती है- "जीवन के सारे संकट, सारी निराशाएँ मानो उसके चरणों पर लोट रही थी। कौन कहता है, जीवन संग्राम में वह हारा है। यह उल्लास, यह गर्व, यह पुलक क्या हार के लक्षण हैं? इन्हीं हारों में उसकी विजय है। उसके टूटे-फूटे अस्त्र उसकी विजय पताकाएँ हैं।"[73]

वस्तुत: होरी का चरित्र भारत के अजेय किसान का चरित्र है। 'गोदान' उसके भगीरथ की गौरव गाथा है। धनिया और गोबर जैसे पात्रों की सृष्टि कर प्रेमचन्द एक प्रकार से स्वाधीनता आन्दोलन में शरीक होने के लिए उन किसानों का आह्वान करते हैं जो अब तक पिछड़े हैं। होरी के मरने के बाद भारतीय गाँव का नया किसान 'गोबर' मानो पिता के हत्यारों के लिए एक चुनौती की तरह जीवित रहता है। वह गोबर जिसने- "राजनीतिक जलसों के पीछे खड़े होकर भाषण सुने हैं और उनसे अंग-अंग बिंधा है। उसने सुना है और समझा है कि अपना भाग्य खुद बनाना होगा। अपनी बुद्धि और साहस से इन आफतो पर विजय पाना होगा।"[74]

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रेमचन्द तत्कालीन भारत में संघर्षरत किसानों के जीवन के कुशल चितेरे हैं। वे राष्ट्रीय मुक्ति संग्राम की अनिवार्य रूप से भारतीय किसानों की मुक्ति के साथ जोर कर ही देखते हैं। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि कथासम्राट प्रेमचन्द के अधिकांश उपन्यास भारतीय कृषकों के यथार्थ का दस्तावेज है वहीं उनका विश्वास कि "आनेवाला समय किसानों और मजदूरों का है।" अविश्वसनीय सा प्रतीत हो रहा है।

❑

---

[73] **गोदान- प्रेमचन्द- पृ. 370**

[74] **गोदान- प्रेमचन्द- पृ. 370**